CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

16.3

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

... प्राप्ति-संख्या.....................
ग्रन्थ-कार्ड
र्णी दि० जैन (शोध) संस्थान
ग्रन्थागार
ारिया, वाराणसी-५

दृष्टि प्रकाश
चन्द अ. मोदी, म. सेठ

की य	लेनेवालेका हस्ताक्षर	लौटानेकी तिथि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२८४८

द्रव्य दृष्टि प्रकाश

❀ स्व० श्री निहालचंदजी सोगानीके आध्यात्मिक पत्र ❀
❀ पू० गुरुदेवश्री कानजी स्वामीके परमात्म ❀
❀ प्रकाशकी गाथा परके प्रवचन और ❀
❀ तत्त्वचर्चा ❀

श्री गणेश वर्णी दि. जैन (शोध) संस्थान
२८४८
नरिया ... वाराणसी

: संपादक :
लालचंद अ. मोदी
शशीकान्त म. शेठ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

: प्रकाशक :
रमेशचंद्र सोगानी
C/o सोगानी अेण्ड सन्स
४/१ अे. गणपत बाग्ला रोड़
कलकत्ता—७

प्रत : २१००
सं. २०२३ आसो शुद १३

: मुद्रणस्थान :
मंगल मुद्रणालय
स्टेशन रोड,
भावनगर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

ભાઈ નિહાલચંદ સોગાની આત્માના સંસ્કાર
[illegible] લઈને દેહ છૂટ્યો છે

पू. गुरुदेवश्रीके आशीर्वाद स्वहस्ताक्षरमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संपादकिय

इस छोटे लेकिन अध्यात्म रसपूर्ण ग्रंथ, अध्यात्मरसिक जीवोंके सामने प्रसिद्ध करनेके लीये सहज प्रमोद हो रहा है।

ईस ग्रंथका परिचय ज्यादातर तो इसका पठन एवं मननसे ही होगा, फीरभी इसका विषय मूख्यतया परमशुद्ध नयका विषयभूत शुद्धात्म तत्व है, जो स्व. श्री सोगानीजीने अपना घोलन अनुसार अपनी मौलिक शैलीमें प्रगट कीया है।

ग्रथ तीन विभागमें संकलित है :—

प्रथम विभागमें स्व. श्री सोगानीजीके पत्र-जो जिज्ञासु परिचयमें आये हुए थे, उनके प्रति लीखे गये-प्रसिद्ध कीये हैं। इस में अध्यात्मके उच्च सिद्धांत रहस्य-जगह जगह पर लिखा मालूम पड़ता है।

दूसरे विभागमें व्याख्यान, पू. गुरुदेवश्री कानजी स्वामीके जो ईस विषयके अनुरुप है, वह लीया गया है। पू. स्वामीजीका, स्व. श्री सोगानीजीका जीवन-परिवर्तनमें अनुपम उपकार है, जो उन्होने बार बार अपने पत्र व चर्चामें स्वाभाविक ढंगसे गाया है। इसलीये इस कृतिका मूल कारण पू. गुरुदेवश्री है, जो आज सारा भारतवर्षमें सनातन दि० जैन धर्मका महान उद्योत कर रहें है।

तीसरे विभागमें श्री सोगानीजीके साथ साधर्मी मुमुक्षुओंको जो चर्चा व प्रश्नोत्तर हुआथा, वह यथा संभव संपादन करके प्रकाशित किया गया है। यह चर्चा आदि सूननेवालोंने अपनी स्मृति अनुसार लीख लीया था, जो संपादन करके यहां संकलन किया है।

इस ग्रंथका नाम 'द्रव्य दृष्टि प्रकाश' रखा गया है, क्योंकि इसमें बहुधा दृष्टि प्रधान कथन ही व्यक्त कीया है, जिनके द्वारा द्रव्य दृष्टिका प्रकाश हो !!

अंतमे इस ग्रंथ प्रकाशन करनेमें जो मुमुक्षुओंने पत्र-चर्चा आदि भेजकर जो सहयोग दीया है, उन सबका हम आभारी है।

हमारी मूल भाषा मारवाडी-हिंदि नहिं होनेसे पुस्तकके संपादनमें भाषाकी (मात्रा-ह्रस्व-दिर्घ एकवचन बहुवचन) भूल रहजाना स्वाभाविक है। पाठक ईसलीये हमें क्षमा करे।

राजकोट
दि. २८-५-६७
वै. वद ५

ली०
लालचंद अमरचंद मोदी
शशीकान्त म. शेठ

*

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्मरणांजलिः—(श्रद्धांजलि)

धर्मस्नेही स्वजन।

आपश्रीने तीनकालमें उत्कृष्ट और महान् धर्मकी भावनाको अपने जीवनमें सम्पूर्ण रुपसे पू. गुरुदेवश्रीकी महान क्रिपासे एकाकार परिणमा दिया। आपके जीवनका यही अनहद्द अदम्य धार्मिक उत्साह प्रतिक्षण स्मरणमें आता है। आपने यह उत्तम बोधि-बीज निज कारण परमात्माके आश्रयसे स्पष्ट अनुभव किया और ऐसी मांगलिक भावना की कि यह बीज बड़-वृक्षकी तरह अनेक स्थानोंमें प्रसरे और अनेकों जीव विशाल पैमाने पर इसका लाभ लें तथा हम सबोंके लिये आपकी वृत्ति हरचद इस तरफ वलण कराती है कि अपनी दृष्टि मेरी ओरसे हटाकर निज-स्वयंके पूर्ण अभेद धामको ही लक्ष्य बनावे, वही श्रेष्ठ है। अतः धर्मकी प्रभावना बढे यह भाव भी निस्सन्देह इसमें गर्भित है। हमारे लिये धार्मिक भावनारुपी बीज रोपनेका महान् श्रेय आपश्रीको ही है। हमलोगोंके लिये आपश्रीने उत्कृष्ट धार्मिक-भावनाका यह सुमार्ग प्रशस्त कर दिया है। इसी भावनाके योगसे हमें पूज्य गुरुदेवश्रीका सुयोग प्राप्त हो रहा है। अहो! आपके हृदयमें तो बस हर-घड़ी और हर पल सोनगढका व सत् महात्माका आशीर्वाद देता हुआ चित्र ही अंकित रहा करता था। इस सत् मार्गकी ओरका यह वलण समय समय पर आपकी भावनामें ओत-प्रोत रहता था। उत्तमोत्तम धर्मके संस्कार आपके पत्रद्वारा हरक्षण प्रेरणारुप हो रहे हैं। आपका यह महान उपकार पूरे भरतक्षेत्रको उत्प्रेरित कर रहा है। ऐसे महान संस्कारोंके बदले आपका यह परम उपकार हम सब कभी नहीं भूलेंगे-नहीं भूलेंगे। आपश्रीके अनमोल हस्तलिखित पत्र, विविध सुवाक्य तथा प्रश्नोत्तरकी इस पुस्तक द्वारा आपको यह स्मरणांजलि अर्पित करते हुये ऐसी सुखद भावना भाते हैं कि इसमें दर्शायी गई आपकी मोक्षेच्छुक भावना शीघ्र अति शीघ्र पूर्ण हो।

स्व-कुटुम्बीजन

अनोपकंवर	कुसुमलता	आशालता
रमेशचन्द्र-रमाकुमारी	नरेशचन्द्र	कुमुदलता
	अशोककुमार	अनिलकुमार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

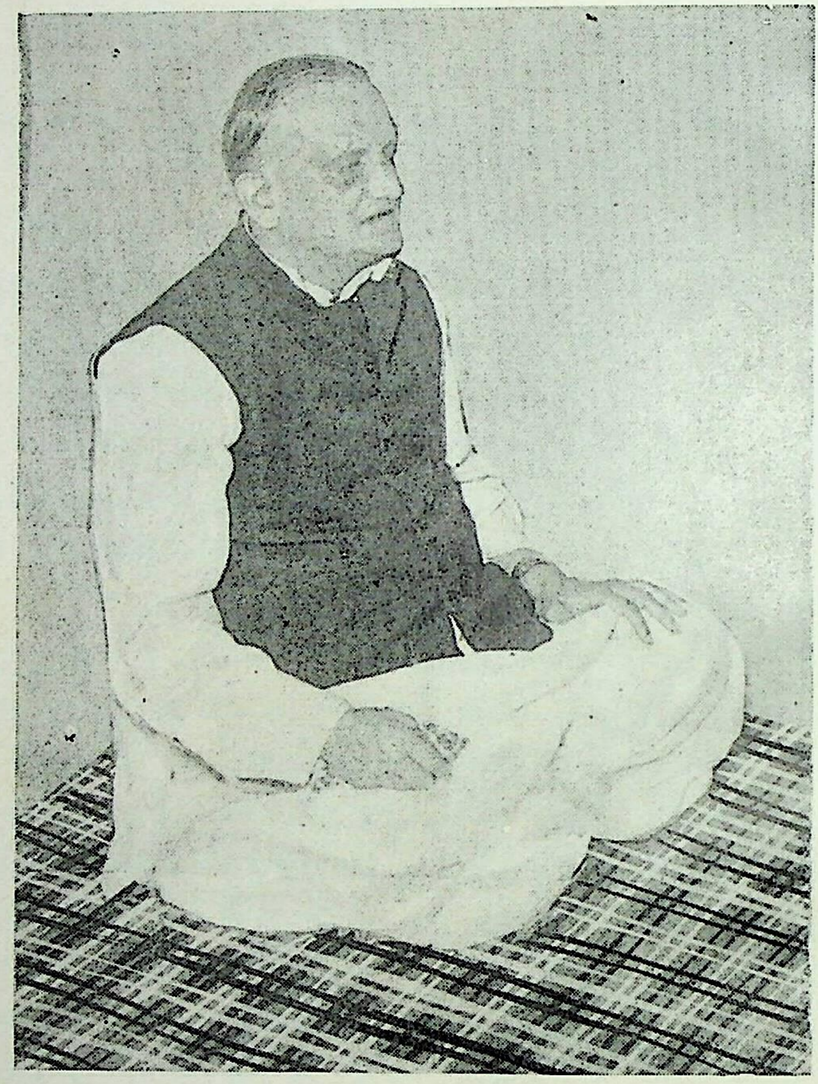

जन्म :
वैशाख सुद-११ सं. १९६९
अजमेर

देहांत :
ज्येष्ठ वद १२ सं. २०२१
कलकत्ता

ॐ

परम कृपालु श्री कहान गुरुदेव
के चरणों में अत्यंत अत्यंत
भक्ति पूर्वक नमस्कार हो
नमस्कार हो

(पू. गुरुदेव श्री के प्रति भक्तिपूर्ण हृदयोद्गार स्वयं के हस्ताक्षरमें)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समर्पण

पूज्य श्री सद्गुरुदेव के परम योग से एवं उनकी अपूर्व सत् अमृतवाणी से मुझ पामर पर अपार उपकार हुआ है। यह होते ही निज सुप्त चेतना तत्क्षण सहसा जागृत हो उठी और उन्हीं के प्रताप से इस भरतभूमि में अद्भुत और अलौकिक धर्म-प्रभावना हो रही है। इनके मुखारविंद से जिनधर्म व जिनवाणीका विशाल प्रवाह अखण्ड अटूट धारावाही बह रहा है, इस आध्यात्मिक स्रोत से निकली ज्ञानगंगामें स्नानकर अनेक जीव शुचि हो रहे हैं। अहो! अपूर्व **आध्यात्मिक सहजानन्द वृत्तिधारक**, महान अनुभवी, प्रखर धर्म उपदेशक, करुणासिंधु परम पूज्य परमोपकारी सद्गुरुदेव श्री **कहानजी स्वामी के** करयुगल में अत्यन्त अनन्य भक्तिपूर्वक सविनयभावे यह "**द्रव्य दृष्टि प्रकाश**" समर्पण करके अत्यधिक आनन्द अनुभवता हूँ।

—रमेशचन्द्र सोगानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संक्षिप्त जीवन परिचय

परम पुनीत पुण्यभूमि अजमेरमें स्वनामधन्य पिताश्री नेमीचन्दजी सोगनीके घरमें यशस्वी पुत्र निहालचन्दजी सोगानीका जन्म हुआ। कैसा अहोभाग्य है कि मूल जैन दिगम्बर सम्प्रदायमें जन्म लिया। इस पुण्यात्माने उदार हृदय एव विशाल व्यक्तित्वके साथ निर्भिकताका तो मानों साम्राज्य ही उनके उस व्यक्तित्वमें समाया था।

समयानुसार शिक्षा भी प्राप्तकी और फिर बुद्धिवन्त तो अल्पशिक्षासे भी पूर्ण-लाभ प्राप्त कर लेते हैं। २२ वर्षकी अवस्थामें आपने गृहस्थ जीवनमें प्रवेश किया।

यद्यपि बड़ा कुटुम्ब था–भौतिक सुखोंकी कमी न थी। पर पुण्यात्मा व्यक्तिको ये सांसारिक सुख नहीं रुचते। अतः मनः स्थलमें शान्तिकी प्राप्तिके लिये झंझावात सा चलने लगा। जीवनकी कठोर वास्तविकता जब शान्तिके आदर्शोंसे टकराई तो अनमेल भावनाओंके कारण मानसमें नीरवता–बैचेनी और धुंधलेपनकी छाया परिव्याप्त हो गई और इसी बैचेनी ने शान्तिकी प्राप्तिकी व्यग्रताको और भी उग्र कर दिया और धर्मके आश्रयमें खींचकर ले गई। निरन्तर यही पुकार उठती शान्ति!!! शान्ति!!! पर शान्ति कहां? बस उसी शान्तिकी अथाहमें वैभवका यह संसार फीका लगा। मनमें भावना उठी 'क्या शान्ति मिलेगी?' अरे! मिलेगी और अवश्य मिलेगी। पर कब और कैसे? इधर धुन थी शान्तिकी और उधर ग्रहस्थ होनेके कारण संसारमें भी योग देना पड़ता था। पर मन उसमें रमता नहीं था, प्रत्येक सांसारिक कार्य विष–तुल्य लगता था। यहां तक कि खाना भी इस अरुचिके साथ खाया जाता कि क्या खाया है इसका भान नहीं। मनमें शान्तिके लिये चक्र सा चलता था। किससे पूंछे शान्तिकी वह राह–इस संसारमें तो—

'यहां कौन किसीकी सुनते हैं,
सब अपनी–अपनी धुनते है.'

३२ सालकी आयुमें जीवन भार सा लगने लगा–जीना एक बोझ सा बन गया। अनन्त शान्तिकी अनन्त खोजके लिये हृदय तड़प–तड़प उठता था। इस आत्मिक शान्तिकी प्राप्तिके लिये कई–कई वर्षो तक किन–किन धर्मोंके द्वार नहीं खटखटाये? सभी धर्मोंका यथासाध्य तत्त्वावलोकन किया रामायण और गीताका यथाप्राण अध्ययन किया, हठयोगियोंके हठवादको साधा, स्वाध्याय की, पर नहीं–नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी आत्मिक शान्ति नहीं मिली । अनमोल मनुष्य भवका एक अंश तो इस भटकनमें ही निकल गया ।

जीवनका उद्देश्य तो यही बन गया था कि—

'इस पथका उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवनमें टिक रहना किन्तु पहुंचना उस सीमा तक, जिसके आगे राह नहीं है' शायद यह राह सम्यक-दर्शन-ज्ञान व चारित्रकी थी, जिसकी सीमा है मोक्ष ।

अन्ततः एकने कहा कि अरे! जैन शास्त्रोंमें ही तो वह शान्ति है। अतः रात-रात भर जागकर अनेक जैन शास्त्रोंका गहन पारायण किया, पूजादि सभी धार्मिक क्रियाएं की, गृहस्थीसे अलग अपना वास किया, अध्ययन-मनन-चिन्तनकी त्रिवेणी बहाई, पर मस्तिष्कमें शान्तिके लिये धधकती हुइ ज्वालाकी भट्टी नही बुझी और नहीं ही बुझी। रात-रात भर इधरसे उधर घूमना, अनन्त सुखकी खोजमें, सहजानन्दकी प्राप्तिके लिये। मन कहता था कि 'यदि शान्ति नहीं मिली तो मेरे इस नश्वर शरीरका असार संसारसे उठ जाना ही श्रेयस्कर होगा।

'जहां चाह है, वहां राह है' तो फिर आत्मार्थी ही इससे वंचित क्यों? पुरुषार्थसे जब सभीको इच्छित वस्तुकी प्राप्ति हो जाती है तो फिर अनन्त सुखका खोजी आत्मा-सुखसे आखिर कितने दिन दूर रहता! धर्मानुरागी भाईको भी एक ऐसे आत्मार्थी सज्जन मिले जिन्होंने परम उपकारी गुरुदेवश्री कहान स्वामीजी (नेमीचंदजी पाटनी)के वचनामृत अंकित 'आत्मधर्म' दिया। झनझनाकर स्वर-लहरी निकली। अरे! मिल गया! जिस सुखकी खोज थी वह मिल गया। आत्मधर्मकी सारगर्भित बात, 'षट आवश्यक क्या एक ही आवश्यक है?' ने उनके अन्तरमें चोट लगा दी। बस तभी आत्मधर्ममें अंकित गुरुदेवके चित्रको देखते ही मन उल्लाससे भर गया और इन शब्दोंके साथ उस भव्य चित्रको अर्घ अर्पण किया :—

'उदक चन्दन तन्दुलपुष्पकैश्चरुसुदीपसुधुपफलार्घकैः,
धवलमंगलगानरवाकुले जिनगृहे जिननाथ मंह यजे!'

'चेतन भिन्न जुदी है काया' यह मूलतत्त्व अध्यात्मयोगी गुरुदेवकी वाणीसे मुखरित, रससे ओत-प्रोत आत्मधर्ममें मिल गया। अहा! ऐसे सन्त महात्माके दर्शनोंके लिये मन तड़पने लगा-परम उपकारी गुरुदेवके दर्शनकी लालसासे व्याकुलता दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्ततः आराधक अपने आराध्य गुरुकी चरण-शरणमें ही पहुंचे सम्वत् २००२में गुरु-चरण-रज मस्तकसे लगाने। ऐसे महान् मुक्तिदाताके दर्शन कर हृदय पुलकित हो गया।

पुण्यात्माको गुरुदेवके इन वचनोंसे कि 'ज्ञान अने राग जुदा छे' एकदम शान्ति मिल गई। गुरुदेवके अमृत वचनोंको सुनते ही लगा कि अरे जिस मुक्तिकी खोजमें दर-दर भटका-वह परम उपकारी गुरुदेवके प्रथम प्रवचनमें ही इतनी सहजता लगी और भाव उठा-'तो क्या मैं मुक्त होनेवाला हूं ?'

अहो! गुरुदेवका यह मिलन और सामीप्य उनके लिये कल्याणकारी सिद्ध हुआ और लक्ष्यकी ओर बढ़नेकी प्रेरणा मिली!

अहा! कितने मार्मिक व महत्त्वपूर्ण थे वे शब्द 'ज्ञान अने राग जुदा छे' कि सांसारिक जालमें भटकते हुए एक प्राणीका तत्क्षण ही सच्चा पुरुषार्थ जाग उठा। स्वर्णनगरी (सोनगढ़)की समितिके एक कमरेमें बैठकर सारी रात अतीन्द्रिय ध्रुव-स्वभावका घोलन किया और उसी रात निर्विकल्प दशा प्राप्त कर ली। उनकी इस निर्विकल्प दशा की अखंड-धारा जीवन-पर्यंत निरन्तर चलती रही।

पू. गुरुदेवकी इस स्वर्ण-नगरीमें आकर स्वयं व कुटुम्बीजनको ऐसे भूल गये जैसे उनसे कभी नाता ही न था-अरे! ज्ञानानन्दकी मस्तीने उन्हें मदहोश बना दिया था। निरन्तर यही भावना उठती थी कि हजारों वर्षों तक भी मैं इस मस्तीको पिये जाऊं तो तृप्ति नहीं होती। यही भाव होते थे मानो।

'हम छोड चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजे क्षणमें जा,
निज लोक हमारा वासा हो, शोकान्त बने फिर हमको क्या.'

अतीन्द्रिय आनन्दके भोक्ता श्री सद्गुरुदेवके प्रति उपकारकी चर्चा चलते ही आत्मार्थी गद्गद् हो उठते। मौन हो जाते। अविरल अश्रु-धारा बहने लगती। मनके उद्गार आंखोंकी राह निकलते।

'गुरुदेवके लिये मेरे हृदयमें क्या है! मैं वाणी द्वारा व्यक्त नहीं कर सकता। इस पामर पर गुरुश्रीकी अनन्त कृपा हुई है। बस निरन्तर यही भावना है कि गुरुचरणोंमें स्वयंको सदैव पाऊं' संसारसे पूर्ण-रूपेण उदासीनताने बार-बार गुरु-चरणोंमें आनेकी व्यग्रता दिखाई पर लाख चाहने पर भी निरन्तर गुरु-चरण सेवाका योग नहीं मिला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार अरुचिकर था–फिर भी संसारके इस कीचड़में फंसना पड़ा। इस सांसारिक कीचड़में अपने जड़ शरीरका योग देते हुए भी आत्मा निरन्तर अपने घोलनमें थी। जब–जब भी बाह्य संसार अपनी ओर बुलाता–गृहस्थीकी झझटें अपनी ओर आकर्षित करती तो ज्ञानी यही कहते थे। 'अरे मुझसे कुछ भी आशा मत रखो–पंगु समझकर दो समयका भोजन शरीर टिकानेके लिये दो।'

करोड़पतियोंकी विशाल नगरी कलकत्ता। ६०–७० लाखकी आबादी। उसमें भी आत्मार्थीको भान होता था। मानों इस अथाह मनुष्य समुदायमें 'मैं एक अकेला (आत्मा) ही सुखी हू' अरे! निश्चित ही सुखी थे। आत्मानन्दका रसास्वादन करनेवाला स्वयंको सुखी ही क्या सर्वसुखी महसूस करता है!

पुण्यात्माको शरीर तो एक व्यर्थका बोझा सा लगता था। कालका मानों सदैव स्वागत था। जिसकी जैसी चाहना (भावना) होती है। वैसा ही योग भी हो जाता है। परम पूज्य पुण्यात्माका भी ऐसा योग बैठा कि अकस्मात हृदयगतिने रुद्ध होकर आत्मार्थीके शरीरके इस व्यर्थके बोझको हटाकर उनके लिये वास्तविक वनवासका मार्ग प्रशस्त कर दिया।

७ जून १९६४ का वह हृदयग्राही दिवस भूलाया नहीं जा सकता। जब देवात्माके हृदयमें दर्द उठा। सारे दिनका उपवास। निरन्तर श्रीमद् राजचन्द्रकी पुस्तिकाका अध्ययन। आत्मघोलन व शान्तमुद्रा। संध्याको इस वेदनाका कुछ अधिक भान हुआ। फिर भी स्नान किया। मानों संसारसे प्रस्थान करनेके लिये जड़ शरीरकी शुद्धिकी। वातावरणमें भी एक अजीब सी उमस, घुटन व उदासी भरी हुई थी। ऐसा लगता था जैसे किसी अव्यक्त वेदनाके गहरे सागरमें डूबते-उतराते रहे हों।

गृहस्थीके सारे विकल्प जालसे मुक्त–एकान्तमें अपने जड़ शरीरका बोझा हटा दिया। उनके जड़ शरीरको सम्पूर्ण आदरभावसे चन्दन तथा कपूरकी चिता पर सुलाया गया।

अकस्मातके इस स्वर्गवासका समाचार जब महाराजश्रीने सुना और वैराग्य-पूर्वक सहज उद्गार प्रकट किये। "अरे आत्मार्थीने मनुष्य जीवन सफल कर लिया है। स्वर्गमें गये हैं और निकट भवी हैं।"

अतः उनकी आत्माकी शान्तिकी प्राप्तिके लिये निरन्तर प्रार्थना करते हुए यही भावना है कि हम सब भी सहजानन्दके उस अलौकिक आनन्दकी, अनन्त सुखकी, अमाप्य शान्तिकी प्राप्ति कर मनुष्य जीवन सफल करें। 卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धि-पत्र

प्रथम विभाग

पृष्ठ	पंक्ति	भूल	सुधार
४	७	कमी	कमी
,,	१६	लकर	लेकर
,,	२०	हूका	हूआ
,,	,,	निशक	निशंक
,,	,,	निस्वाथ	निस्वार्थ
६	१३	चितमय	चिन्मय
१०	९	गणिते	गलिते
११	१०	व ां	वहां का
१२	११	प्रिय ह	प्रिय है
,,	१७	पूण	पूर्ण
१४	१	प्रखस्त	प्रसस्त
१७	१०	नीवं	नींव
२७	१३	परिणामम	परिणाममें
२८	१३	बहिनन	बहिनने
,,	१७	निहालभाइन	निहालभाईने
३३	९	अनुपम हिमा	अनुपम महिमा
४३	५	यथाथ	यथार्थ
,,	१२	युक्तसत्	युक्तंसत
४४	१८	दुःखरुप ह	दुःखरुप है
४५	८	सम्यक्त तो	सम्यक्त्व तो
४७	४	अभाव	अभान
५२	१७	होता ह	होता है
५३	१८	स्तुमें	वस्तुमें
,,	२०	वतमानसे	वर्तमानसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	भूल	सुधार
५९	२	सदत्रकी	सद्दैबकी
६०	१७	अधिकारकी	अधिकृकी
६१	३	सुखक	सुखके
,,	९	एलहिए	लहिए
६३	१६	जतः	अतः
६५	३	ठीका	टीका
६७	१९	ह्तु	हेतु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१)

प्रथम विभाग

-: अध्यात्मिक-पत्र :-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) अजमेर

२२-३-४९

आत्मार्थी प्रत्ये निहालचन्द्रका धर्म स्नेह,

कार्ड आपका मिला, विहार आदिके समाचार ज्ञात हुए।

जबसे आपका कार्ड आया है तबसे रोज कुछ जवाब लिखना है ऐसा विकल्प होता है, परन्तु लेखनी नहीं बढ़ती कारण क्या लिखूं ऐसा कोई सहज विषय स्मरण नहीं होता।

..."मैं त्रिकाली सहज ज्ञान स्वभावी ध्रुव पदार्थ हूं व प्रतिक्षण ज्ञानरूप परिणमन मेरा सहज स्वभाव है-जड़ आश्रित परिणाम जड़के है"। पू. गुरुदेवके इस सिद्धान्तकी घूंटी ने क्षणिक परिणाम-की ओरके वलणके रसको फीका कर दिया है व सहज स्वके सिवाय कोई कार्यमें रस नहीं आता है अतः जवाब आदि नहीं पहुंचनेमें व विलम्ब आदिके होनेमें मेरी ओरका ख्याल न करना।

उत्कृष्ट शुभ-दृष्टिकी अपेक्षा आपको महाराजश्रीके व्याख्यानों-की अनुकूलता है, परन्तु यहां तो अशुभ प्रतिकूलताएं बहुत हैं। फिर भी 'मुझे विश्वमें कोई भी पदार्थ अनुकूल है ना प्रतिकूल है, इस सिद्धान्तको लेकर मैं प्रतिकूलताओंको भी अनुकूल ही समझता हूं। कारण ऐसी अवस्थामें स्वसामर्थ्यका ही आश्रय लेते रहे यही एक प्रयोजन रहता है व पर तरफ अधिक नहीं अटक पाते।

...आत्म स्वास्थ्यमें उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहे यही अभिलाषा है जो कि (यद्यपि) आत्मा तो अभी ही पूर्ण-स्वस्थ्य और अभिलाषा-रहित है, परन्तु अपूर्ण-परिणमनकी अपेक्षा ऐसा लिखा है।

आपका

निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) अजमेर

२९-९-४९

आत्मार्थी प्रत्ये निहालचन्द्रका धर्म स्नेह।

अभी-अभी आपका कार्ड मिला...मैं परिस्थितिवश दिवाली के पहले वहां नहीं आ सकता। दिवालीके दूसरे या तीसरे दिवस वहां आऊंगा।

......वहां सर्व विशुद्धि अधिकार पर व्याख्यान होता है, मैंने पहले भी ऐसे समय पर वहां उपस्थित होना सोचा था परन्तु अभी भी नहीं आ सकता यह पुण्यकी कमी है। साथ ही गुरुदेवके गुरुमन्त्रका उपयोग करते रहनेसे अर्थात् अखन्ड ज्ञान स्वभावका आश्रय लेते रहनेसे जैसे-जैसे, पुण्य विकल्प सहज ही टूटते जाते हैं वैसे-वैसे आत्मामें सर्व विशुद्धि सहज ही विकसित होती जाती है। अतः परम सन्तोष भी है।

कलकत्ता व हिसार आदिसे पंडितगण व मुमुक्षुजन वहां आ रहे हैं यह उनके पुण्यका उदय समझो और यदि उन्होंने वहां यथार्थ दृष्टि करली तो उनके परम पुण्यका उदय समझो। निमित्त नैमित्तिक ज्ञानका सम्बन्ध बताता है कि जहां तीर्थंकरकी तैयारी होती है वहां गणधरसे लकर केवलियों तककी भी कमी नहीं रहती। समुदायका समुदाय ही केवलज्ञानकी तैयारीके सन्मुख बढता ही जायेगा, ऐसी दृढ प्रतीति होती जाती है।

अजमेरका वातावरण अभी शुभोपयोगी मिथ्यादृष्टियोंसे भरा हुआ है। कभी-कभी गुरुदेवकी ठोस, निशकं, निस्वाथ व स्वआश्रित वाणीका असर फैलता है फिर पूर्व आग्रहोंके कारण दब जाता है। अन्तमें पात्र होगें वे ठिकाने आजायेगें।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमाजी पर से कीकी (आंख) का चिन्ह निकाल लिया गया यह बहुत ही अच्छा हुआ, ऊपरी बाह्य दृष्टिवालोंके यह एक बाधक कारण होता था।

पू. गुरुदेवको अत्यन्त भक्तिपूर्वक प्रणाम व और मुमुक्षु भाईयोंको यथायोग्य।

धर्मस्नेही
निहालचन्द्र

❀

(३) अजमेर
३-७-५०

आत्मार्थी, प्रत्ये निहालचन्द्रका धर्म-स्नेह।

आपका कार्ड प्राप्त हुआ आरम्भमें ही सर्वत्र उपादेय, यथोचित विशेषणों द्वारा स्तुत्य गाढ़ आत्म संवेदनरूपी आपका नमस्कार पढ़ कर व आत्म-स्वास्थ्यमें निरन्तर वृद्धिकी भावना देख कर चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्रीका मुमुक्षुगण सहित राजकोटके विहारकार्यका सुन्दर धर्म प्रभावनापूर्वक पूर्ण होना जानकर इस बातकी प्रतीति होती है मानो नायक सहित सर्व संघका निश्चय प्रभावना रूपी कार्य भी शीघ्र व निर्विघ्न रीतिसे पूर्ण होनेवाला है। आपश्रीका निश्चित स्थान, सोनगढ़का आगमन इस बातका द्योतक होता है मानो हम सबकी परिणतीका त्रिलोकरूपी राजकोटका विहाररूपी भ्रमण समाप्त होकर निश्चिन अविनाशी स्व-स्थान-अमृतमयी चैतन्यलोक आत्म-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गढ़में आगमन हो रहा है जहां कि सहज आनन्दसे तरंगित सहज आत्मरमणरूपी विहार सादि अनन्तकाल तक स्वाभाविक ही होता रहेगा।

पूर्व उदयके योगसे मैं आप जैसे पुण्यशालियोंकी तरह श्रीगुरुदेव के समीप रहकर उनके संघका उनके वचनामृतका निरन्तर लाभ नहीं ले सक रहा हुं, इसका मुझे महान् महान् खेद होता हैं-साथ ही उनके बोध द्वारा बोधित मुझे यह सन्तोष भी होता है कि निश्चयसे सत् गुरुदेव मुझसे दूर नहीं हैं-जहां मैं हुं वहां ही मेरे गुरु हैं अतः मैं मुझमें मेरे गुरुदेवको देखनेका सतत् प्रयत्न करता रहता हुं और जब जब गाढ़ दर्शन होता है तब-तब अपूर्व-अपूर्व रसास्वादका लाभ लेता रहता हूं, मानसिक विकल्प रूपी भारसे हलका होता रहना हूं सहज ज्ञानघन स्वभावमें वृद्धि पाता रहता हूं। सोनगढ़की चिनमय भव्य दिव्य मूर्तिको अधिक समिप होकर गहन दृष्टिसे देखता रहता हूं।

आशा करता हूं कि जुलाई माहके अन्त तक लगभग एक माहके लिये वहां रहनेको आ सकूंगा। आशा है वहां सर्व-कुशल होगें-आपका वहांका पत्र कभी-कभी आनेसे एक प्रकारका सम्बन्ध वहां का बने रहनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त है यह मेरे पुण्यका योग है ऐसा मैं मानता हूं-यहां योग्य कार्य लिखे।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र सोगानी

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) कलकत्ता

२१-६-५२

आत्मार्थी प्रत्ये निहालचन्द्रका धर्म स्नेह।

आपका कार्ड अजमेरसे लौटकर यहां आया, कारण मैं अधिकतर आजकल यहां ही रहता हूं-योग कुछ ऐसा ही है कि आर्थिक सम्बन्धकी अपेक्षा प्रत्यक्ष तौर पर मेरा धार्मिक संग इस समय दूर सा हो रहा है और मैं बहुत समयसे सोनगढ नहीं आसक रहा हुं-यह कहना व्यर्थ है कि अन्तरंगमें यहां होते हुए भी मुझे वहां की स्मृतिए, ऐसा कोई दिन न होगा कि नहीं आती रहती होवे-पू. गुरुदेवकीस्मृति इस समय भी आ रही है व आंखोंसे गर्म-आंसू आ रहे हैं कि उनके संग रहना नहीं हो रहा है-उनका असंगरुचिका उपदेश (अथवा स्वसंगका) कानोंमें गूंजता रहता है और उसकी रमणतासे ही यहां की उपाधिए ढीली सी रहती हैं, उस दिनकी प्रतीक्षामें हूं कि कब उस गरजती हुई दिव्यमूर्तिके चरनोंमें शीघ्र अपने आपको पाऊं।

......आशा करताहूं कि आपकी परिणति स्वस्थय होगी पू. गुरुदेवके चरणोंमें मेरा सादर भक्तिपूर्वक नमस्कार व सब भाइयोंको धर्म स्नेह।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) कलकत्ता

२८-१०-५२

आत्मार्थी, प्रत्ये निहालचन्द्रका धर्मस्नेह ।

......कुछ ऐसा योग है कि अभी तक मेरा उधर आना होता ही नहीं है-सहज परम निवृत्तिमय कारण परमात्माका आश्रय पूज्य गुरुदेवने ऐसा बतला दिया है कि उसके अवलम्बनसे सहज परम अनाकुलता उत्पन्न होती रहती है, कहीं आने-जाने आदिके समस्त विकल्पो रहित अनादि अनन्त स्वमें ही स्थिर हूं तो कहां आना व कहां जाना फिर भी वहां न आनेका खेद वर्त्तता रहता है ।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

(६) अजमेर

१८-४-५३

आत्मार्थी,

मैं यहां कल आ पहुचाथा......स्वकुटुम्बियों से भी अधिक वात्सल्ययुक्त आपका व्यवहार प्राप्त होनेसे इस समयकी मेरी सोनगढ यात्रा अपूर्व रही-महोत्सवके आरम्भसे अन्त तकके वहांके सुखदायी दृश्य अब तक स्मृति पर दौडते रहते है ।

गुरुदेवके निकट रहनेसे पर्याय स्वभाव उग्रतर रहा करता था व सोनगढ स्थान व वहांके मुमुक्षुओंकी उपेक्षा सी हो जाया करती थी परन्तु अब तो वहांकी धूलके लिये भी तड़फना पड़ता है-गुरुदेव के दृष्टान्त अनुसार भभकती भट्ठीमें गिरनेका सा प्रत्यक्ष अनुभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां एक दिनमें ही मालूम होने लग गया है। धन्य है वहांके सर्व मुमुक्षु, जिनको सत्-पुरुषका निरन्तर सयोंग प्राप्त है।

......सब सहजानन्दकी रमणतामें प्रचुर मस्त रहें यह ही आकांक्षा है।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

(७)

कलकत्ता

१८-५-५२

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

तीव्र धर्मानुरागी,

धर्मस्नेहीका पत्र दूरसे देखते ही चित्त प्रसन्न हो उठता है। आपका कार्ड पढ़ा।

धन्य है गुरुदेव उनका जन्मदिवस व जयन्तीका प्रत्यक्ष लाभ लेनेवाला पुण्यशालियोंका समूह-जिनके दर्शन मात्रसे तीव्र मुमुक्षु कृतकृत्य हो जाते हैं, ऐसे गुरुदेवके जन्म-दिवस वारंम्वार उजवाते रहें यह ही भावना है।

एक युगसे आपकी निरन्तर पूज्य परोपकारी गुरुदेवके प्रति भक्ति व तत्त्वकी तीव्र जिज्ञासा भरा हृदय, हृदयमें पूर्ण अंकित है-प्रारब्धने अबके वहांके सहवासका ऐसा संयोग कराया कि वहांकी अनुपस्थितिमें, मनोयोग वहांके लक्ष्य आश्रित, मौनपणे, प्रतिकूल परिस्थितियोंमें भी, आत्मकथा करता रहे। मानो भावी अपूर्व विकल्पोंके लिये एक नये निमित्तका जन्म हुआ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यहां संग असत्संगका है, उदय नीरस है। वहांका योग निकट भविष्यमें होनेके आसार दिखाई नहीं देते, अतः अत्यन्त उदासीनता है व व्यवहारमें तो बेभान सी दशा हो जाया करती है।

सत् गुरु द्वारा प्राप्त अनुभव ऐसे कालमें विषमता आदिको समता पने वेदे व अप्रतिबद्ध स्वभाव सन्मुख तीव्र वेग करे, यह ही सबसे श्रेष्ठ है, व शीघ्र मनोरथ पूर्ण होनेका यह ही शुभ लक्षण है।

बंध रुचिवाला सर्व क्षेत्र कालादिकमें बंधरूप ही रहता है, अबंध रुचिवाला सर्वक्षेत्र कालादिकमें अबंधरुप ही रहता है, यह नियम है।

" देहाभिमाने गाणिते, विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनोयाति, तत्र तत्र समाधय॥ "

—श्रीमद्

तीव्र ताप बरसात इच्छती है व बादल जलरूप परिणम जाते हैं-ऐसे घनिष्ट सम्बन्ध (निमित्त नैमित्तिक) जगतमें हैं-पर इनके अस्थिर स्वभावको जानकर ज्ञानी इन्हें नहीं इच्छते-निमित्त-नैमित्तिक स्वभावके अभाव-स्वरूप सहज नित्य निरिच्छक स्वभाव-को ही इच्छते है और यह ही योग्य भी है।

सहज ज्ञानामृतरस इच्छुक
निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८)

कलकत्ता
२८-६-५३

धर्मप्रेमी, निहालचन्द्रका धर्मस्नेह।

कार्ड एक आपका लगभग पंद्रह दिवस पहले मिला था, मैं कार्यवश रांची गया हुवा था-अतः जवाबमें विलम्ब हुआ!

आशा है परम कृपालु गुरुदेव सुख शान्तिमें बिराजते होगें व आपलोग निरन्तर उनकी अमृतमयी वाणीका लाभ लेते होगें-यहां तो पुण्ययोग ही ऐसा नहीं है कि वहांका लाभ शीघ्र-शीघ्र मिला करें। निवृत्तिके लिये जितना अधिक छटपटता हूं उतना ही अधिक इससे दूर सा रहता हूं ऐसा योग अबके हो रहा है। कई बार तो फूट-फूट कर रोना सा आ जाता है-शायद ही कोई दिवस निकलता है कि बारम्बार व ां स्मरण नहीं आता होवे-किसीने कहा है कि—

"मिलत एक दारुण दुःख देई।
बिछुड़त एक प्राण हरलेई॥"

सो संयोगोकी अपेक्षा यहां तो ऐसे ही ऐसे संगमें रहना पड़ रहा है जहां कि दारुण दुःखका अनुभव हुआ करे।

परम कृपालु गुरुदेव कहते है कि ऐसे दुःख-सुख भावोंको पूर्णरूपसे, एकाकाररूपसे जीवको नहीं भोगना चाहिए-सम्यक् एकान्तरूप स्वरुप दृष्टिके बलसे सहज ही अंशे-अंशे जीव इनसे क्षणे क्षणे सरकता रहे, भिन्न पड़ता रहे व ऐसी दृष्टिका अभ्यास निरन्तर बढ़ता रहे यहही भावना है।

धर्मस्नेही
निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९) कलकत्ता
८-७-५३

धर्मप्रेमी, से निहालचन्द्रका धर्मस्नेह।

कार्ड आपका मिला, पूर्व पत्र कुछ चिन्तित दशाके समय लिखा गया था, अतः शायद आपको कुछ ख्याल सा हुआ दिखता है।

जिस सामान्य ध्रुव-स्वभावमें चिंता व अचिन्ता दोनो ही पर्यायका अभाव है-उसके आश्रय पश्चात बेचारी अल्प चिन्ताकी स्थिति ही कितनी ?

पूज्य गुरुदेवश्रीकी अनुभवरससे भीगी हुई वाणी वहां कर्त्ता-कर्म अधिकारकी वर्षा कर रही है—अहा ! आपकी इस हार्दिक भावनाका मैं हृदयसे स्वागत करता हूं कि मैं भी आप सबोंके संग इस वर्षामें स्नान करूं।

अरे विकल्प ! यदि तुझे तेरी आयु प्रिय ह तो अन्य सबको गौण कर व गुरुदेवके संगमें ले चल वरना उनका दिया हुआ वीतरागी अस्त्र शीघ्र ही तेरा अन्त कर डालेगा।

स्वसंग, गुरुसंग व मुमुक्षुसंगके अलावा दूसरे संगको नहीं इच्छते हुए भी, अरे प्रारब्ध ! विष-तुल्य संगमें रहना पड़ रहा है-खेद है।

पूण चेष्टा है, शीघ्र योग मिलते ही वहां आऊं, परन्तु अभी कोइ नज़दीक समय दिखाइ नहीं देता है-फिर भी प्रयत्न पुरा है।

सबोंको यथायोग्य।

धर्मस्नेही
निहालचन्द्र

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०) कालीमपौंग (दार्जीलिंग)

२४-८-५३

ॐ

एसे मुनीवर देखे जाके, राग द्वेष नहीं मनमें।

आत्मार्थी,

मैं कलकत्तासे एक माह हुआ बाहर गया था, परन्तु खेद है सोनगढ आनेका सौभाग्य नहीं हो सका-शेठ बछराजजीके साथ 'गया' जाना हुआ था [redacted]

शेठ बछराजजी व मोहनलालभाईका सोनगढ जल्द जानेका विचार है परंतु खेद है मैं फीर भी अभी नहीं आ सकता, दिवालीके पास तक आना हो सकेगा एसी आशा है-परसों यहांसे कलकत्ता जाउं गा।

वहां परम पूज्य श्री सद्गुरुदेव परम सुख शान्तिमें विराजते होगें-हृदयमें उनको नमन करता हूं।

अपनी सुधि भूल आप, आप दुःख उपायौ।
ज्यों शुक नभचाल बिसरि, नलिनी लटकायौ॥ १॥

'मन वच तन करि शुद्ध भजो 'जिन' दाव भला पाया।
अवसर मिले नहीं ऐसा, यों सत्गुरु गाया'॥ २॥

'धन धन साधर्मीजन मिलनकी घरी।
बरसत भ्रम ताप हरन, ज्ञान धन झरी'॥ ३॥

वहां सर्व मुमुक्षु मण्डली श्री गुरुदेवकी धर्मामृत-वाणी-पानमें मग्न है, विचार आते ही, दूर रहने रूप दुर्भाग्यका खेद होता है॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'चिद्‌राय गुन सुनो, सुनो प्रशस्त गुरु गिरा।
समस्त तज विभाव, हो स्वकीयमें थिरा'॥ १॥

'कुगुरु, कुदेव, कुश्रुत सेये मैं, तुम मत हृदय धरयोना।
परम विराग ज्ञानमय तुम, जाने बिन काज सरयोना!'॥ २॥

हे जिन! मेरी ऐसी बुधि कीजै।
राग-द्वेष दावानल तें बचि, समता रसमें भीजै॥ ३॥

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

(११)

कलकत्ता

१०-११-५३

पवित्र आत्मार्थी,

आप दोनोंका लिखा हुआ कार्ड कल रात्रिमें मिला—सोनगढ़का पत्र देखते मात्र ही हृदय कैसा डोल उठता है, व्यक्त करनेमें असमर्थ हूं वहांकी स्मृतियों बिना कोई दिवस नहीं गुजरता—आपके अन्तरंगको भली प्रकार समझता हूं फिर भी पत्रादिककी प्रवृत्तिमें मन संकुचित सा रहता है। अतः उत्साहवर्धक पत्र नहीं लिखा जा सका था!

कुछ समयसे यहांके दिगम्बर जैन मन्दिरजीमें रात्रिको एक घन्टे मुमुक्षु भाईओंके साथ शास्त्र-स्वाध्याय होती है-पूज्य श्री गुरुदेवकी शारिरीक अस्वस्थता व स्वस्थ्यताके समाचार समय-समय पर उन भाईयोंके पास वहांके पत्रादिक आते थे उससे मालूम होते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहते थे। परम-परम हर्ष है कि परम अद्भूत जीवन उद्धारक, जन्म-मरणरूपी रोगसे रहित करनेवाले, योगीराज श्री सद्गुरुदेवका स्वास्थ्य अब बिलकुल ठीक है-अनादि अनन्त आयुके धारक चैतन्य गुरुदेवकी देह भी दीर्घायु होवे ऐसी भावना है।

बाह्य प्रवृत्ति व संयोगों से इच्छा (राग)का माप नहीं होता व इच्छासे निरीच्छुक सूक्ष्म अभेद वृत्तिका माप नहीं होता-इच्छा होते हुए भी पुण्य योग बिना क्षेत्रान्तर नहीं होता। वहां आने-जाने आदिके वायदे निश्चय निहालभाईके नहीं समझो। निश्चय निहालभाई तो अनादिसे कहीं आये गये ही नहीं न अब अनन्तकाल कहीं आने-जानेवाले ही हैं। न कभी किसीको वायदा किया ही था न करनेवाले ही हैं। वायदे व आने जाने आदिका कार्य सब जड़ाश्रित जड़का ही है, चेनन निहालभाईका नहीं चेतनने तो इस ही के कहलाये जानेवाले रागसे भी कभी निमित्तरूप सम्बन्ध तक नहीं किया तो अन्य क्रियाओं व वायदोंमें तो इसका सम्बन्ध देखना वृथा है। हे प्रभो ! सर्व जीव सर्व-सम्बन्धोंसे रहित मात्र सामान्य चेतनमें ही अपने अस्नित्वकी दृष्टि करे व लिखने, पढ़ने, आने जाने, वायदे करने कराने आदि सर्व पागलपनकी क्रियाओंको उपचारिक निमित्तपने श्री क्षय कर देवें, यह ही भावना है।

जड़ निहालभाईको अब ही सोनगढ़ पहुंचनेमें करीब २० दिवस और लगें ऐसी आशा है। कलकत्तेसे एक हफ्तेमें क्षेत्रांतर होनेके आसार हैं।

धर्मस्नेही
निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२) कलकत्ता
२-१-५४

ॐ

आत्मार्थी......

आशा है परम कृपालु उपकारी श्री गुरुदेव सुख-शान्तिमें विराजते होगें-निर्जरा अधिकार व श्री मोक्षमार्ग प्रकाशकका आठवा अध्याय बहुत सरस चल रहा होगा।

पत्र आपका मीला समाचार निगाह कीये आपलोगोंका विहार समयका प्रोग्राम जाना-जैसा अनुकूल योग होगा, गिरनार यात्रा आदिके समयका मेल मिलानेकी चेष्टा करुंगा। परन्तु अब योग होना कुछ कठिन सा दिखाई पडता है। आप लोगोंको व्यक्त करनेमें असमर्थ हूं कि वहां के लिये मुझे कितनी उत्सुकता रहती है-महाराजश्रीके विहार पहले उनके प्रवचन-साक्षात-दर्शन आदिका लाभ न होना हीन पुण्यका सूचक है।

समय पर वहां नहीं पहुंच सकनेके विषय पर आपकी परेशानी जानी-आपके वाचक शब्दोंसे वाच्य भावका अनुमान होता है मोक्षार्थी अपने क्षणिक अल्पकालीन भावोंका मूल्य नहीं आंकते।

सबोंको यथायोग्य—

धर्मस्नेही
निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१३) अजमेर
१७-१-५४

आत्मार्थी... सोनगढसे धर्म-स्नेह।

आपका पत्र मिला। समाचार निगाह किये। इस समय सोनगढका वातावरण विहारकी अद्भूत उमंगोंमें भरा हुआ होगा। सर्वश्रेष्ठ नेता सहित मोक्ष-मण्डली स्थान-स्थान पर विजयका स्थम्भ रोपने जा रही है। यह विचार हृदयको खूब उल्लसित करता है, दुर्भाग्यवश मुझे ऐसे अवसर पर वहां नहीं रहनेका खेद है। आशा है गुरुदेवश्रीका आत्मस्वास्थ्य व शारिरीक स्वास्थ्य निरन्तर वृद्धिगत हो गे।

आपने व्यावसायिक, यहांकी मेरी परिस्थिति बाबत पूछा सो इस विषयको आपको लिखनेका विचार नहीं होता है, हमारी नींव तो मुक्ति-रसक विचारों पर पडी है। दूसरे विचारोंमें आपको रस आवे, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। अभी कार्यवश पत्र बंध करता हुं, आपका प्रोग्राम लीखते रहना स्वस्थानको मुख्य रखकर ही परस्थानोंके क्षणिक विकल्पोंका सहज ज्ञान होता रहे यह ही इच्छा है।

धर्मस्नेही
निहालचन्द्र

❀

(१४) कलकत्ता
१-२-५४

धर्मस्नेही...सोनगढसे धर्मस्नेह।

आशा है कल मुक्तिदूत श्री सद्गुरुदेव व मुमुक्षुगण राजकोट सकुशल पहुंच गये होगें। लोकमें अलौकिक क्रांति फैल रही होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आपका पत्र मिला। मांगलिक विहारके आदि व अन्त स्थान गुरुदेवश्रीकी जन्मभूमि 'उमराला'का चित्रित दैनिक अंक भी मिला। यहां इस भक्तिभावपूर्ण अंकको मुमुक्षुओंके बीच बांचनेका शुभ-योग भी मिला। सबोंने हृदयसे रसास्वादन किया।

रह-रह कर विकल्प होता रहता है कि कमसे कम एक दो वर्ष निरन्तर अलौकिक सत्पुरुषके सहवासमें रहना होवे पर प्रारब्ध अभी ऐसा नहीं दिखता है, विहारमें जूनागढ़ आदिका योग शायद नहीं है।

मुझे व्यवहारिक अनुकूलता रहा करे, ऐसी आपकी सद्भावना-ओंको मैं भलीभांति समझता हूं कारण अबके आपके अधिक नज़दीकमें रह चुका हूं व आपके प्रतिके मेरे विकल्प इसके साक्षी होते रहते हैं। फिर भी ऐसी भावनाओंका मुख्य-दृष्टि स्वीकार नहीं करती। सहज ही निषेध वर्त्तता जाता है। भावना एक समयकी व उस ही समय हम इससे अधिक। स्वाभाविक न होनेसे एक दूसरे के आश्रित विचित्रता घटती हुई राग-द्वेषमें परिणित हो जाये; या वीतरागतामें, ऐसा स्वभाव है, राग भी नित्य नहीं रहता!

अहो! बिना विकल्पका कोरा आनन्द ही आनन्द, त्रिकाली गुब्बारेको पूर्ण फूलाये बिना (विकसित किये बिना) अब एक क्षण भी चैन नहीं है। ध्यानस्थ अवस्थामें बैठा हुआ, अथाह ज्ञान समुद्र व उसमें ही सहज ही ऐसा अनुभव मानों 'मैं ही मैं हूं'-आनन्दकी घूंटे पिये जा रहा हूं-अरे रे! वृत्ति आनन्दसे च्युत होने लगी। पर वाह रे पुरुषार्थ! तूने साथ रही उग्रताका संकल्प किया, मानों अथाहकी थाह, सदैवके लिये एकबारमें ही पूरी ले लेगा। प्रदेश-प्रदेश व्यक्त कर देगा सहज आनन्दसे एक क्षण भी नहीं हटने देगा! पर अरे योग्यता! तूने पूर्णताके संकल्पका साथ नहीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देकर अन्तमें च्युत करा ही तो दिया, तो फिर इसका दण्ड भी भुगतना पड़ेगा। बहेनोकी सद्‌भावनाएं देखकर उनकी इच्छानुसार अपनी व्यावहारिक अनुकूलता आदिका समाधान भी करना होगा। संक्षेपमें बात यह है की आर्थिक स्थिति पहलेसे साधारणतया अच्छी है सोनगढ समय पर पहोंचने वास्ते यहांसे रवाना होने हेतु टीकीट आदिका प्रबंध हो गया था, देहली आदि तार भी दे दीये थें हमारे यहां मुनीम एक होंशीयार व्यक्ति है, परंतु पैसेके कार्यमें कचा है, रवाना होनेके पहेली रात मालुम हुआ की पांच चार जगहसे उगा ही की रकम लेकर चूपचाप नीजीकार्यमें इसने खर्च कर दी है स्थितिको काबूमें करनेका विकल्प हो गया, रुकना हो गया। दूसरा बंदोबस्त जल्द ठीक नहीं बैठ सका। वह मेरी अनुपस्थितिमें सब रकम साफ न हो जाये एसा विकल्प उठ खडा हुवा। गृहस्थभूमिका है, शिथिल योग्यताकी विजय हो गई, रुकना हो गया, बस इतनी ही बात है—अतः लिखना ठीक नहीं समझा था और भी सहकारी कारणोंने रुकनेमें ही सहायता दे दी।

विहारके व राजकोटके कोई विशेष महाराजश्रीके उद्‌गार लिखना। व कोई महत्त्वपूर्ण घटना होवे तो लिखना। आप सबको सहजानंदकी प्राप्ति होवे यह ही इच्छा है। धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

आपने लिखा कि शान्तिसे पत्र लिखनेकी फुर्सत नहीं है क्या अभी शान्ति ही है। यह बताने हेतू समाप्त किये बाद भी लिखनेका विकल्प हुआ है।

“ पर्याय एक ओरसे प्रवेश करती हुई दिखती है, दूसरी ओरसे रमती हुई दिखती है, तीसरी ओरसे उघड़ती हुई दिखती है। वस्तु विचित्र है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीपककी लौ बुझनेके पहिले समय अधिक प्रकाशित होती है। सहजानन्दसे च्युत होनेवाला पुरुषार्थ निर्बल होनेके पहले समय अधिक उग्र होता है। द्रव्य तो सहज पुरुषार्थका पिण्ड है, उसकी दृष्टिमें सहज ही च्युति नहीं होती"।

'जीवनके परिणमनकी अतिविचित्रता देखो रे ज्ञानी।'

❀

(१५) कलकत्ता

ॐ २५-६-५४

पुज्य गुरुदेवाय नमः।

आत्मार्थी...सोनगढ, निहालचन्द्रका धर्म-स्नेह।

पत्र आपके पहले भी मिले थे व एक अब भी कलकत्तामें मिला। मैं करीब दो माहसे कलकत्तासे बाहर था अतः जवाब आदि नहीं दिया जा सका था। क्या बताऊं हृदयको पूर्णतया व्यक्त नहीं किया जा सकता है। यहां भी तीव्र भावनाएं थी कि पूज्य गुरुदेवके विहारमें अवश्य साथ होऊं। कुछ दिनों अजमेर रहना हुआ वहांसे उमरालाका प्रोग्राम भाई सौभाग्यम दोशी भजन मंडली वालोके साथ था। परन्तु वह भी पूर्ण नहीं हो सका! यहांसे गए पश्चात २०-२५ दिन शारीरिक अस्वस्थताके कारण देर अधिक हो गई थी अतः मीलवालोंके तार टेलीफोन बहुत आनेसे अत्यन्त खेद है कि पू. परमोपकारी गुरुदेवके दर्शन बिना ही कलकत्ता वापस लौटना पडा। अब इस हालतमें उधर जल्दी आनेका प्रोग्राम फिलहाल नजर नहीं आता है। शेठ वछराजजी मालुम हुवा की सोनगढ गए है, पहोंचे होगे पुण्ययोग नहीं है, वहांका संयोग नहीं है-अरुचिकर वातावरणका योग है। महान्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अफसोस है-आपकी बारम्बारकी भावनाओंको, मुझे वहां बुलाने-को मैं भलीभांति समझ सकता हूं। मेरा भी हृदय अब वहांके लिये आतुर है। काफी समय हो गया है पूज्य गुरुदेवकी व सोनगढ-के वातावरणकी स्मृतियां बारम्बार उत्साहको बढ़ाती रहती हैं। पापबंध ढ़ीले पड़ते हैं-पुण्य-बंध वृद्धि पाते हैं-विवेकमें है-पर इन सबसे क्या-अहो गुरुदेव! आपने तो इन दोनोंसे ही निराली वृत्ति दिखाई है, जो कि इनके होते हुए भी विचलित नहीं होती, खूंटेके सहारेसे ड़िगती नहीं है, उसे द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावका प्रतिबंध नहीं है-पू. गुरुदेव कहते है कि जो कुछ लाभ है सो तो यह वृत्ति ही है। अनन्त सुखोके पिण्डके साथ रहती है-फिर चिन्ता काहेकी, यह तो स्वयं स्वभावसे ही चिन्ता रहित है, निश्चिन्त वृत्ति में चिन्तित वृत्तिका तो अत्यन्त अभाव है। हे भगवान! आपकी यह वाणी मस्तिष्कमें नित्य घूमती रहे, यह ही भावना हैं।

अधिक फिर-आशा है सभी बहेनो कुशल होंगे।

धर्मस्नेही

❀ निहालचन्द्र

(१६)

कलकत्ता

२७-६-५४

ॐ

आत्मार्थी सोनगढसे निहालचन्द्रका धर्मस्नेह।

पत्र एक पहले दिया सो पहुंचा होगा। आशा है परम पूज्य उपकारी सद्गुरुदेव सुख-शान्तिमें विराजते होगें। व श्रोतागणोंको अमृतरसमें स्नान करनेकी प्रेरणा मिलती होगी।

धर्मस्नेही

❀ निहालचन्द्र सोगानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१७) सोनगढ़
२८-७-५४

ॐ

श्री कहान गुरुदेवाय नमः ।

आत्मार्थी सोनगढ़से निहालचन्द्रका धर्मस्नेह ।

आशा है पूज्य गुरुदेव सुख-शान्तिमें विराजते होगें । मुमुक्षु-मन्डल प्रतिक्षण आत्माश्रित सुखकी वृद्धिमें रत होंओ ।

पत्र आपका यथा समय मिला था । मेरा अजमेरमें तो लगभग १५-२० दिवस ही रहना हुआ था । आपने लिखा कि-" विकल्पनुं कांईक कार्य आव्युं नहीं " सो हमारा तो सिद्धान्त भी यह ही है कि विकल्पके अनुकूल कार्य होवे ही, यह आवश्यक नहीं है, विकल्प-विकल्पमें, कार्य-कार्यमें ।

मोक्षमार्गीको कुटुम्बीजनों मध्ये सुख मिलता होवे यह कल्पना ही गलत है ।

भावसो भवनवास, जालसो जग नीवास,
कालसो कुटुंब काज, लोक लाज लारसी.

"बनारसीदास"

उसे तो निरन्तर आत्म-रमणता चाहिए-'अरे जिसे धार्मिक-जनोंके संग भी नहीं रूचते, उसे कुटुम्ब-संग तो रुच ही कैसे सकता है ? अरे विकल्प आश्रित पदार्थसे भी लाभ नहीं, साथ ही विकल्प से भी लाभ नहीं ' ।

आपने लिखा कि 'निमित्त-नैमित्रिक सम्बन्ध एवो छ के तीव्र भावना होय तो पापनो उदय पलटीने पुण्यनो उदय थई जाये' । विकल्पानुसार पदार्थकी प्राप्ति होना पुण्य नहीं है, वरन्-तीव्रता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पलट कर मंदता होना पुण्य है। अतः राग छूटने अथवा कम होनेमें सुख है, पदार्थके मिलनेमें नहीं। अतः आत्माश्रित रागकी मंदता होवे यहही भावना है।

गुरुदेव कहते हैं –'इच्छामां सावधानपणुं ज्ञानीने नथी, पोताना स्वभावनुं सावधानपणुं चूकीने पर पदार्थमां सावधानपणुं ज्ञानी करतो नथी'-ज्ञानीने इच्छानी इच्छा नथी। प्रदेशे-प्रदेशे मैं मात्र चैतन्य-चैतन्य व आनन्द ही आनन्दसे ओत-प्रोत वस्तु हूं। स्वरूप रचना पर्यायमें स्वतः ही हुए जा रही है; इच्छा तोडूं, स्वरूपकी वृद्धि करुं आदि विकल्पोंका जिस सहज-स्वभावमें सहज ही अभाव है। अरे! सहज शुद्ध पर्यायका भी जिस त्रिकाली ध्रुव वस्तुमें सहज ही अभाव है, एसी नित्य वस्तुमैं हूं, त्रिकाली परिपूर्ण हूं, एसी दृष्टि एकवार अवश्य-अवश्य हो जाओ-बस सुख समुद्रका दरिया एकदम सहज उमड पडेगा। परके लिये विकल्प करना बेकार है। अरे! मैं बिना किसी के ही अभी ही परिपूर्ण हूं, एकवार ऐसी तीव्र भावना होनी चाहिए ताकि सामान्य वस्तुके बोधका अवसर आये। 'परमें सावधानीपणा नहीं स्वमें सावधानीपणा होना चाहिए'।

अरे द्रव्य सामान्य! तेरे प्रतापसे झुकती हुई पर्याय (परिणाम) भी सहज खड़ी होती जाती हैं, अनादिका बोझा प्रतिक्षण हटता जाता है, उत्तरोत्तर सुखकी वृद्धि होती है-धन्य है तेरा बोध! गुरुदेव कहते हैं :—

"ज्ञानीने ज्यां स्वरूप निधान प्रगटयु, त्यां पर्यायमां (शरीरमें नहीं परिणाममें) जुवानी आवी जाय छे, निर्भयता अने निशंकता थई जाय छे। क्षणे-क्षणे अबंध स्वरूप प्रगट थतुं जाय छे। वर्तमान पुण्यभाव थाय अने एनुं फल हजो एवी वाछां ज्ञानीने नथी!"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कीचड़में धसने पर भय वृद्धि पामता जाता है पर चैतन्यमें धंसने पर निर्भयता वृद्धि पामती जाती है। मैं चैतन्य-चैतन्यमें ही चलता हूं-जड जडमें विभाव विभावमें-मुझ नित्यमें मेरी पर्याय (परिणाम)का भी प्रवेश नहीं है। अन्यकी बात ही क्या! अरे! परिणाम परिणमता है और उस ही समय मैं अपरिणामी हुं। अरे भगवान कारण परमात्मा! तेरा दर्शन होते ही विभाव की पीठ दिखने लगती है, तेरा यथार्थ भान हूए बिना पूर्वमें परिणाम आश्रित परिणामोंका इतना तीव्र बंध कर चुका था कि उनकी अवधि खतम होनेके लिये तेरे दर्शन स्वाभाविक होने ही थे। अरे चैतन्य! तेरी इतनी पहोलाई विस्मितसा कर देती हैं। हे गुरुदेव! आप कितनी पहोलाई तक प्रसर चुके हो, पहोलाइ भी है साथ ही ठोसपना भी! हे गुरुदेव! आपकी वाणीका स्पर्श होते ही मानों विश्वकी उत्तमोत्तम वस्तुकी प्राप्ति हो गइ। क्या मैं मुक्त होने वाला हूं। अरे! शास्त्रोंमें जिस मुक्तिकी इतनी महिमा बखानी है, उसे आपके शब्द मात्रने इतना सरल कर दिया। क्या विश्वमें अब और भी कुछ चाहना बाकी रह गई! अरे निरीच्छक वस्तु! राग-रहित अतीन्द्रिय आनन्दका अपूर्व स्वाद-अपूर्व सहज ज्ञानकला।

गुरुदेव कहते हैं-" मारुं ज्ञानतत्त्वज मने गम्य छे। गमे ते क्षेत्र होय पण पोताना ज्ञानमाज व्यापीने रहे वो छे! ज्ञानी पुण्य-पाप (विकारीभाव) शरीरके निमित्तमा अवगाहन करतो नथी। पण पोताना ज्ञान स्वरूपी गगन-मन्डलमांज व्यापे छे।" देखो गुरुदेवकी ज्ञानानन्द मस्ती।

गुरुदेवकी कथन-शैली तो देखो-कहते हैं कि-"अशुद्धता रोकाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाय छे एटलेके अशुद्धता प्रगटज थती नथी, तेने अशुद्धताने रोकतो एम कहेवाय छे"।

अज्ञानदशामें चेतन्य गांठ कर्मोंके संगमें कभी इधर लुढ़कती है व कभी उधर पर ज्ञान दशामें ऐसा बोध होता है कि 'अरे! परिणाम परिणम गया और मैं यूं का यूं ही रह गया'। ऐसा मैं त्रिकाली नित्य-ध्रुव अद्भूत रत्न हूं।

गुरुदेवके चरनोंमें रत, मुक्ति मण्डलीमें मेरे उत्तरकालके स्थानका निश्चित भान है, पर अरे! यह तो जड़पद है, मेरा तो चैतन्य पद है।

"निज कल्पना थी कोटी शास्त्रो मात्र मननो आमलो गुरुवर कहे छे। ज्ञान तेने सर्व भव्यों सांभलो"।

अनुभव लेखनी में व्यक्त नहीं हो सकता।

सबोंको धर्मस्नेह।

❀ निहालचन्द्र

(१८) कलकत्ता
९-९-५५

आत्मार्थी......सोनगढ।

धर्मस्नेह।

पत्र एक आजदिन आपने किसीके मार्फत भिजवाया था सो मिला है, पहले भी अजमेरमें मिला था। कई कारणोंसे जवाब लिखनेकी वृत्ति रुक गई, व अब भी पत्रादिक लिखनेको मन नहीं करता है। हमारी तरफके आपको विकल्प होते हैं पर विकल्पोंमें तो जागृति सदा हेय होनी चाहिए, चाहे वह साक्षात तीर्थंकरके प्रति ही क्यों न होवे। निज द्रव्यमें अस्तित्वका निरंतर श्रद्धान व सहज अनुभव रहनेसे, सहज ही विकल्प टुटने लग जाते है व सहज ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निर्विकल्प स्वाद आने लगता है, जिसके आस्वादन किये बाद विकल्पोंका रस सहज ही ठंडा पड़ने लग जाता है। हमारा तो मन निज चैतन्य बिंब के अलावा अब कहीं नहीं जाना चाहता। लौकिक दृष्टिसे हमारा एक-डेढ़ वर्षसे अधिक का समय तीव्र असाताकी दशाओंमें रहा अतः इस कारणसे भी पत्रादिककी वृत्ति ओछी रही। हमारी तो वह ही इच्छा है कि आपके विकल्प भी और कहीं इधर-उधर न जाकर अपनी निज चैतन्य प्रतिमाको घडने लग जाये, तो वस्तुका आश्रय होते ही अपूर्वता प्रगट होवे व हमारी तरफके निरर्थक विकल्पोंका अन्त हो जाये।

हमारा पत्र आदि न मिले तो कोई ख्याल नहीं करना चाहिए। हमारी वहां आनेकी जिज्ञासा काफी है, अभी योग्यता नहीं हैं आने पर स्पष्टता कर सकेंगे।

श्री गुरुदेवका प्रसाद दैनिक यहां आता है। उनका शारीरिक स्वास्थ्य ठीक होगा।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

ॐ

श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः।

(१९)

कलकत्ता

आत्मार्थी......सोनगढ।

२३-३-५६

निहालचंद्रका धर्मस्नेह।

कलकत्तेसे एक भाई वहां गये थे उन्होंने आपके समाचार कहे थे। विद्वत-परिषद पर वहां पहुंचनेका निश्चय किया था वह भी कुछ ही समय अर्थात् एक हफ्ते तक वहां ठहरानेका, सो प्रोग्राम बदलनेसे फिर रुकना हो गया। कुछ योग ही ऐसा है, पूर्व

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्म भी ऐसे हैं कि उत्कृष्ट संयोगसे वंचित रहना पड़ रहा है। सर्व प्रथम सोनगढ़ गया था तब ही तीव्र भावना थी कि वहां कोई मकानका प्रबन्ध कर निरन्तर गुरुदेवके चरणोंमें लाभ उठाऊं, परन्तु योग ऐसा है कि अबके तो बरसोसें भी दर्शन नहीं हो सके। इस माहमें तो वहां की बारम्बार स्मृतियां प्रबलतर होती जा रही हैं व परिषद पर पहुंचनेका योग भी नहीं बना। (गोयां) मुझे परिषदसे अधिक प्रेम नहीं था फिर भी सुयोग समझकर समय चुना था। ऐसी हालतमें पत्र लिखनेका विचार हुआ सो लिखा जा रहा है।

जिस आत्मद्रव्यमें परिणाम मात्र का अभाव है उसमें जम गया हूं, परिणमन सहज, जैसा होता है, होने दो। हे गुरुदेव! आपके इन वचनोंने अपूर्व निश्चलता पैदा कर दी है। चंचलता व निश्चलता तो परिणामम है, मैं नित्य हूं, मेरमें नहीं, यह अनुभव अपूर्व है। परिणाम क्षण-क्षण निराकुलताको वृद्धि पामते हैं। "तो पण निश्चय राजचन्द्र मनने रह्यो, गुरु आज्ञाए थाशुं तेज स्वरूपजो।" सम्यक पुरुषार्थसे या तो पुण्य योग होकर, अनुकूलता प्राप्त होकर राग टूटे अथवा पुण्यके अभावमें वीतरागता बढ कर राग टूटे। राग टूटना निश्चित है क्योंकि श्रद्धा ने राग, अराग-रहित स्वभावका आश्रय लिया है व वीर्यकी क्षण-क्षण उधर ही उधर सहज उन्मुखता होनेसे ज्ञान आनन्दमयी अरागी परिणाम ही वृद्धिगत होंगे, यह नियम प्रत्यक्ष अनुभव गम्य है।

अभी रात्रिके आठ बजे हैं मन्दिरजी जाने का समय है अतः बन्द करता हूं। सबको धर्मस्नेह कहे।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

(२०) कलकत्ता
४-९-५६

आत्मार्थी......सोनगढ, धर्म-स्नेह।

कार्ड मिला। परम पूज्य महानयोगी श्री गुरुदेवके चरणोंमें सादर प्रणाम। आशा है गुरुदेव श्री सुख-शान्तिमें विराजते होंगे व आप पुण्यवान जीव उनकी साक्षात अमृतवानीसे पूर्ण तृप्त हो रहे होंगे।

लम्बे कालसे, हीनयोगसे, मुझे तो प्रत्यक्ष गुरु-दर्शनका अभाव रहा है, शिखरजीकी यात्रा पर, अथवा कलकत्तेके प्रोग्राम पर पुण्योदयसे, साक्षात दर्शनका लाभ होनेवाला है, यह जानकर चित्तमें बहुत प्रसन्नता है।

भादवा सुदी ५ को बहिने आजीवन ब्रह्मचर्यकी प्रतिज्ञा लेंगी, यह प्रसंग बहुत सुखप्रद होगा। शान्ता बहिनका आज कार्ड मिला, मालूम हुआ अचरज बहिनकी बच्चियें भी प्रतिज्ञा लेंगी, बहुत हर्षका विषय है, मैं इस अवसर पर जैसा कि बहिनने शरीक होनेको लिखा हैं वहां नहीं आ सकूंगा, इसका मुझे खेद है; बहिनसे मेरी असमर्थता सूचित कर देना। प्रसंगके प्रति मेरी हार्दिक अनुमोदना है।

बहिनें सोचती होंगी, निहालभाईने न पत्र दिया है न आना ही हुआ है कहीं सुमार्गसे हटना तो नहीं हो गया है, कारण अशुभ योगों में तो प्रवृत्ति है व शुभ से उदासीनता दिखती है। मेरे प्रति अनुराग है न। अतः आपको कहकर कार्ड डलवाया होगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विकल्पात्मक वृत्तियोंका तो सहज ही अनुमान कर लिया जाता है परन्तु निर्विकल्पताका माप तो बाह्यसे नहीं किया जा सकता। यह तो स्वयं के समाधानका विषय है। बहिनोंका व आपका मेरे प्रति वात्सल्यवत् अनुराग है, व मेरा भी आपलोगोंके प्रति, 'यह एक मार्ग' में चलनेवालोंका सहज सम्बन्ध है, एकाकार गोलेमें प्रविष्ठ दृष्टिसे वृत्तियोंमें फेरफार नहीं किया जा सकना, जड पत्रादिककी बात तो दूर। हां, इस दृष्टिसे यथार्थ ध्येय व मार्गकी निशंकता अवश्य है, अनुभव गम्य है। शक्तिकी निरन्तर पकड अथवा एकतासे अथवा 'शक्तिमयी हूं' इस अनुभवसे वृत्तियोंके सहज फेरफारका प्रत्यक्ष समाधान होता है, व गुरुदेवकी वाणीका साक्षात अर्थ समझमें आता है। जिसका फल वृद्धिगत होते हुए सुखकी पूर्णता है। अशुभमें सहज खेद शुभमें कुछ उत्साह सहज ही होता है, पर इन दोनोंमें अथवा शुद्धतामें भी फेरफार करनेसे कोई प्रयोजन नहीं 'मात्र पिंड हूं' वृत्ति नहीं, गुरुदेवके इन्हीं वचनोंको हृदयमें उतार लिया है।

शेष फिर।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

(२१) कलकत्ता

आत्मार्थी, २९-६-५९

प्रत्ये निहालचन्द्रका परम धर्मस्नेह।

आपका कार्ड अजमेरसे भिजवाया हुआ मुझे यहां मिला। मैं करीब १५ दिनसे कलकत्ता ही हूं-व्यापार सम्बन्धी कार्यसे आया हुआ हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीगुरुदेवको मेरा अत्यन्त भक्तिपूर्वक नमस्कार कहना और सर्व भाईयोंको धर्मस्नेह। मुझे अत्यन्त खेद होता है कि मेरा बजाय वहां रहनेके इधर-उधर ही रहना हो रहा है। अभी करीब १५ दिवस-के और यहां ही हूं और शायद अधिकतर यहां ही रहना होगा। चौमासेमें १ माहके करीब वहां रहनेकी अवश्य पूर्ण भावना है।

स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी प्रतियें मैं अजमेर जानेसे भेजनेमें समर्थ हो सकूंगा-यहां कलकत्तामें सोनगढ़से सम्बन्धित कौन भाई रहा करते हैं यदि हो सके तो पता भेजना।

और यहां योग्य कार्य लिखना।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

(२२)

कलकत्ता

२०-७-६१

आत्मार्थी,

पूज्य गुरुदेवश्री सुख शान्तिमें विराजते होंगे। साधर्मीजन समवशरण जैसे वातावरणमें उनकी दिव्य ध्वनि जैसी अमृतवाणी-का लाभ लेकर अनन्तसुख प्राप्त करे यही भावना है।

आपका पत्र ता. १५-७का मिला। इसके पहले तो कोइ नहीं मिला था। हीन पुण्ययोग होनेसे सोनगढ़ प्रतिके विकल्पकी प्रधानता नहीं होनेसे अभी तक मैं उधर नहीं आ सका, इसका अत्यन्त खेद

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। गए तीन माहमें कुछ ऐसे योग हुए, प्रथम मेरे पिताजीका स्वर्गवास हो गया। एक माह बाद मेरे स्वयंके शरीरका छूटने जैसा योग हो गया था। कुछ व्यक्तियोंने मेरे पास बेग देखकर, उसमें रकम नहीं होते हुए भी, रकमके भ्रमसे मेरे पेटमें ९ इंच गहरा खंजर मार दिया। डाक्टरको इजीली (शीघ्र) पल्स हाथमें नहीं आई। आपरेशन आदि होकर अस्पतालमें रहना पड़ा। आज ही घरसे बाहर इस एक्सीडेन्टके बाद पहले पहल ही निकल रहा हूं।

किस प्रकार आत्मा अपनी ओर पुरुषार्थकी वृद्धि करनेका प्रयोग करता है? आपके इस प्रश्न पर मेरा इतना ही लिखना है कि प्रथम यथार्थ श्रद्धा समय, श्रद्धाकी पर्यायका अखण्डकी ओर जो झुकाव अथवा लीनताका पुरुषार्थ होता है, उसमें जो पुरुषार्थका प्रयोग है, बारम्बार उसके प्रयोगकी वृद्धि होती रहती है उसे वृद्धिका पुरुषार्थ कहते हैं। पहलेके व बादके पुरुषार्थके प्रकारमें कोई प्रकारका फर्क नहीं है। इसलिये गुरुदेवश्रीका यथार्थ समझन पर बारम्बार जोर आता है कारण प्रथम समझनमें ही भविष्यका सम्यक् पुरुषार्थ गर्भित है।

अखण्ड ज्ञानधन पुरुषाकार (देहाकार) शरीर, कर्म, भावकर्म व शुद्ध पर्यायसे भी ऊंड़ा चैतन्य तत्त्व मैं हूं, यह ही मेरा अस्तित्व है। शुद्ध पर्यायका अस्तित्व भी इसमें गौण है, ऐसी प्रथम यथार्थ श्रद्धा जब ही कही जाती है कि ऐसी श्रद्धाके प्रसारके साथ ही लीनताका प्रथम आत्मानुभव होता है। लीनताका पुरुषार्थ अथवा इसमें वृद्धि यह सब पर्यायके कार्य हैं। मेरापणा-मेरा अस्तित्वपणा अथवा व्यापकपणा तो केवल त्रिकाली ज्ञानधन अखण्ड चैतन्यमें है। इस दृष्टिमें पर्यायका पुरुषार्थ सहज स्वभाव है, पर्याय अपेक्षा पुरुषार्थ हुआ, वृद्धि हुई, उसे पुरुषार्थ किया, वृद्धि करी, ऐसा कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यथार्थमें तो उक्त अस्तित्वपणेकी अखण्ड दृष्टिके बलपर पर्यायोंका क्रम सहज अखण्डकी ओर बढ़ता रहता है। पुरुषार्थ आदिकी इस पर्यायमें कोई उलट फेर (अधिक व कम पुरुषार्थ आदि) करना नहीं पडता कारण पर्यायमें तो मेरी दृष्टिके विषयका अस्तित्व ही नहीं है" कि मैं उसमें कुछ कर सकूं। मेरा अस्तित्व तो त्रिकालीपणेमें है।

आशा है; मेरा दृष्टिकोण; मैं व्यक्त कर सका हूं।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

ॐ

श्री गुरुदेवाय नमः।

(२३)

कलकत्ता ७

१३-८-६१

धर्मस्नेही......सोनगढ।

आपका पत्र मिलाथा। मेरे सोनगढ आकर श्री गुरुदेवकी वाणीका लाभ लेने वास्ते लिखा सो जाना। मैं शायद सितम्बरके अन्तमें वहां आ सकूंगा, इसके पहिले आना होना नहीं दिखाई देता।

मुझे आपके पहले के पत्र नहीं मिले थे, कारण समझमें नहीं आया!

आशा है गुरुदेव श्री सुखसातामें विराजते होंगे।

आपका

निहालचन्द्र सोगानी

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२४)

ॐ

चैतन्यमूर्ति श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

आत्मार्थीसे......सोनगढ धर्मस्नेह। १९-१०-६१

आपका वात्सल्ययुक्त पत्र यथा समय मिला। भरतखंडका अलौकिक कर्त्ता-कर्म अधिकार, आत्मरससे ओतप्रोत वक्ता, साधक मुमुक्षुगण श्रोता, जिनालयकी सामूहिक भक्ति, निरन्तर अमृतवाणीसे संस्कारित तृप्त भूमिस्थान आदि समवशरणसे हृदय पुण्यहीनको नहीं सम्भवते, अतः वियोग है। लाभ प्राप्त करनेकी तीव्र प्रतीक्षा है।

पू. गुरुदेव कहते हैं-"बहुमान आदिके शुभरागकी महिमा नहीं आकर उत्कृष्ट चिदानन्द स्वभावकी अनुपमम हिमाके दृढ निर्णयका पराक्रम होने पर अंतर स्वभावमें वलण होता है" स्वरूप सीमाको उल्लंघन किये हुए पूर्व उदय, अखंड स्वरूप संस्थानमें दौड लगाते हुए, सीमा स्पर्शके पूर्व ही भयभीत होकर निराश्रय, लडखडाकर गिरने लगते है। क्रमः क्रमः पूर्णता होनेकी, सुख-शान्तिके अनुभवपूर्वक निशंकता वृद्धि पामती है।

बलवानको सब साथ देते हैं, साधकके अखण्डबलके जागृत होते ही, अचेतन पुद्गलादि भी अखण्ड स्वरुपाकार वर्तकर सहायक (व्यवहारे) होने लगते है।

पत्रोत्तर मिलना, नहीं मिलना, विलम्ब होना आदि सब विस्मृत करने योग्य हैं। ज्ञानानन्द स्वभावकी अनुभूतिमें भंग पडने पर लिखने आदिके विकल्प होते हैं; सो सब स्वरुपसे निकलते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही, प्रत्यक्ष उन्मत्त-पागलपनकी जड़-दशा स्वरूप अनुभवाते हैं। जडसे जडके संम्बोधनोंमें चेतनको कोई लाभ नहीं।

वर्त्तमान पर्यायमें पूर्व, उत्तर कालकी पर्यायका ज्ञान विद्यमान है, तब स्मरण, मननका बोझा उठाना व्यर्थ है।

शुभ योगमें भी थकान अनुभव करनेवाले जीवके लौकिक योगकी तीव्र दुःख-दशा पर हे करूणा सिन्धु! करूणा करो-करूणा करो, यह ही विनंती।

पर्याय ही पर्यायका कर्त्ता है, त्रिकाली अंश अथवा आत्मा द्रव्य नही, यह कर्त्ता-कर्मकी चरम सीमा है। अतः पर्यायमें आत्मा एकाकार होना योग्य नहीं।

निरन्तर समाधि इच्छुकका सर्वोको यथायोग्य।

❀

(२५)

ॐ कलकत्ता

१-११-६१

सतत दृष्टिधारा बरसाते, अखंड चैतन्यके प्रदेश २ सहज महान् दीपोत्सवकी क्षणे क्षणे वृद्धि करते श्री गुरुदेवको अत्यन्त भक्ति-भावे नमस्कार।

धर्मानुरागी......

पत्र यथासमय मिला, मेरे प्रति के अनुरागसे, बारम्बार आप लोगोंको मुझे वहां बुलानेका विकल्प होता है, परन्तु पू. गुरुदेवके सान्निध्य दीपावलीके अवसर पर मुझे लाभ सम्भव नहीं है। आंखके आपरेशनका समय कम रह गया है सो पूरा-पूरा ख्यालमें है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री दीपचन्दजी आदि वहां आये हुए हैं व मेरे सम्बन्धमें कुछ बात भी हुई लिखा सो जाना—अधिक क्या लिखूं श्री बनारसीदास-जीके पद दोहरा देता हूं।

'मैं त्रिकाल करनी सो न्यारा चिद्विलास पद जग उजियारा
राग विरोध मोह मम नाहिं, मेरो अवलम्बन मुझ मांहि'

'तजि विभाव हूजे मगन, शुद्धातम पदमांहिं।
एक मोख मारग यह, और दूसरो नाहिं॥'

आप सबोंको जय जिनेन्द्र।

आपका
निरीच्छुक मोक्षाभिलाषी

❀

(२६)

ॐ

श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता
१६-१२-६१

आत्मार्थी...धर्मस्नेह।

लगभग २० दिनोंसे रागांशमें विशेष खेद-खिन्नता वर्त्त रही है, ऐसे समय आपका पत्र मिलनेसे प्रसन्नता हुई। वहांसे आये पश्चात १-१॥ माह तक सोनगढ़की विशेष खुमारी रही, अभी तो उसका शतांश भी नहीं है।

व्यावसायिक स्थितिमें कई प्रकारके परिवर्त्तन हो जानेसे, अब चलें, अब चलें, सोचते हुए भी वहां आनेका प्रोग्राम नहीं बन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सका। गुरुदेवश्रीकी आंखके आपरेशनके ता. २४ बाबतके समाचार सुवर्ण-सन्देशमें भी पढ़ थे। परन्तु पुण्ययोगके अभावमें उनके साक्षात दर्शन व वाणीका लाभ कैसे मिले। व्यवहारसे व खास तोरसे अशुभ-योगसे पूर्ण निवृत्ति चाहते हुए भी, ग्रहस्थ आदि व्यवसायिक जंजालोंका ऐसा उदय है कि मन नहीं लगे वहां लगाना पड रहा है, बोलना नहीं चाहते उनसे बोलना पड रहा है, ऐसी योग्यता है।

हे गुरुदेव ! लोकोत्तर लाभ हेतू आपके वचनों पर श्रद्धा की है। आशीर्वाद देता हुआ आपका मोहक चित्र देखा है। आपके आशीर्वादसे पूर्ण आनन्दमयी निधिको प्राप्त हो जाऊं और अनन्त पदार्थोंके तीनकालके अनन्ते भाव वर्त्तमान एक-एक भावसे अविच्छिन्न प्रत्यक्ष होते रहें-ऐसी तीव्र अभिलाषा है। दरिद्रीको चक्रवर्त्तीपनेकी कल्पना नहीं होती ! पामरदशावालोंको 'भगवान हूं-भगवान हूं 'की रटन लगाना, हे प्रभो ! आप जैसे असाधारण निमित्तका ही कार्य है। परिणतिको आत्मा ही निमित्त होवे अथवा भगवान-भगवानकी गुंजार करते आप, अन्य संग नहीं यह ही भावना।

मेरा यहां रहने अथवा बाहर जानेका प्रोग्राम तो सदैव की तरह अनिश्चित सा ही समझो।

अशुभ योगमें कंटाला हुआ।

—चेतन

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२७)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

धर्मस्नेहीसे......सोनगढ शुद्धात्म सत्कार। ९-४-६२

आपका कार्ड व पत्र मिला। मानस्तम्भके शुभ प्रसंग पर भी मैं वहां नहीं आ सकूंगा इसका कारण पत्रके साथ भेजी गई शादीकी पत्रिकासे मालूम होगा। बडे पुत्रकी शादी ता. १६-४की है। पुण्यवानोंको शुभ-प्रसंगका योग है, उन्हें अशुभ प्रसंग पर बुलाना ठीक नहीं है फिर भी लौकिक व्यवहारवश दो पत्रिकाए भिजवाई हैं। वहांसे आये पश्चात परिणति कीचडमें ही फंसी रहती है, जैसी योग्यता है वैसे ही निमित्तों मध्ये रहना हो रहा है। प्रत्यक्ष दुःख-समूहमें वेदन चलता है परन्तु एक ही झटकेमें हटना नहीं होता है। रस बिल्कुल नहीं है। खेद वर्त्तता है फिर भी इधरसे निवृत्ति योग नहीं बैठता। यह भी पूर्व कर्मोंकी देन ही है। अखण्डताका प्रयास भी शिथिल सा ही रहता है। हे गुरुदेव। आपमें तीव्र भक्तिका उदय होनेसे ही इधरके दुःखका इलाज होगा, दूसरा कोई ईलाज नहीं यह भलीभांति जानता हूं।

अधिक क्या लिखूं! सोनगढकी दया का पात्र हूं, आपके उलाहने सुनने योग्य हूं। करीब एक माहसे कुछ शारीरिक अस्वस्थ्यता भी चल रही है।

हे प्रभो! शीघ्र इधरसे निवृत्ति होकर गुरु-चरणोंमें रहना होवे। जिन्होंने अखण्ड गुरुवासमें चरना सिखाया है यह ही विनंती—

आप सबसे क्षमाका इच्छुक व आपकी वात्सलयताका आभारी।

❀ निहालभाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२८)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः ।

कलकत्ता

आत्मार्थीसे...सोनगढ़ धर्म-स्नेह ! १४-७-६२

पत्र आपका मिला, इससे पहले एक पत्र यहां लग्नके समय मिला था जिसका जवाब भी दिया था। इस मध्ये तो कोई पत्र मिला नहीं। हर पत्रमें मेरे वहां आनेके लिये स्वाभाविक रागवश आपका अनुरोध रहता है व न आनेके लिये बहुत प्रकारका उलाहना व उपदेश भी। मेरे परिणामोंकी स्थिति समय-समयकी लिखी तो नहीं जा सकती, इतना ही कह सकता हूं कि बिना रसके भी परि-स्थितिवश लाचारीसे ही इधरके अशुभ उपयोगोंमें रहना होता है। मेरी भूमिकामें अशुभ-उपयोगकी ही अधिकता है। स्थिरताके प्रयत्न समय भी-अधिक क्या लिखूं ! ध्रुव आत्मा तो परिणामोंमें भी किंचित उथल-पुथल नहीं कर सकता। ध्रुवमें श्रद्धाकी यथार्थ व्यापकताका यह नियम श्री गुरुदेवने बताया है वह सही है। समझमें भी है। रागको इधर करो उधर करो आदि तो परिणामों पर अस्तित्व समझनेवालोंके लिये मुख्यतः अपेक्षाओंके कथन हैं। परिणाम शुभ हैं, अशुभ हैं इनमें कितना पुरुषार्थ भी सहज लग जाता है आदि-ध्रुवकी एकता सहितके ज्ञानमें आता रहता है। श्रद्धाकी अखण्ड एकताके साथ ही चारित्रकी अखण्डता भी ध्रुवके साथ हो जाये यही लक्ष्य है व यथार्थ श्रद्धाके साथ ऐसा ही होगा यह ही नियम है। इसके हुए बिना, मात्र ऐसा हुए बिना, जीवको चैन नहीं। अन्य तरफके रागमें निरन्तर रस नहीं। चाहे क्षणिक रस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दिखाई भी दे। शुभ निमित्तोंके संगमें अधिक मंद कषायादिक होनेसे स्थिरता भी अधिक व शीघ्र होती रहती है। यह भी ज्ञानमें है, परन्तु मुख्य संग तो निर्बाध अपराधीन चैतनका ही है। अन्य संग तो उदयाधीन है। अधिक लिखनेमें सार नहीं। उधर आनेके विकल्प भी बहुबार उठते हैं पर अधिक जोर नहीं खाते। आपके पत्रोंके मात्र उधर आने बाबत लिखे होनेका अतः क्या जवाब दूं। मेरी ऐसी स्थितिमें आप वहांके रोजाना या हफ्तेके ख़ास-ख़ास गुरुदेवश्रीके न्याय आदि लिखो तो अधिक प्रिय लगेंगे। आना तो होगा जब होगा, शायद जल्दी आ भी जाऊं, ऐसा योग भी दिखता तो है।

सब बहनों व शशीभाईको धर्म-स्नेह।

—आत्मार्थी

❀

(२९)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

३-९-६२

आत्मार्थीसे...सोनगढ धर्मस्नेह।

आपका पत्र पहले भी मिला था और शशीभाईका एक और भी। आपने लिखा कि अब निवृत्ति काल पका-यह पढकर विजलीके वेगकी तरह आनन्दकी लहर आयीथी, कारण पूर्वे निवृत्ति ही विकल्परुपसे निश्चये भजीथी ऐसा पूरा प्रतीतिमें आता है। अबतो श्री गुरुदेवकी कृपासे न निवृत्त हूं न प्रवृत्त हूं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा निश्चय हो चुका है। व पूर्वके निवृत्त परिणामोंने अतः अब निश्चयके बजाय-व्यवहारका पद ले रखा है। समय लगभग २० दिन पहले आया भी था। बम्बई तक जाना भी हुआ था। सोनगढ पहुंचनेके विकल्प भी अधिक हुए थे। मगर इधर ही लौटना पड़ा ऐसे कारण हो गये थे। अब दशहरेके बाद उधर आना हो सकेगा।

आपलोग साक्षात् चैतन्यमूर्त्ति गुरुदेवके सान्निध्य दशलक्षण पर्वके अवसर पर अति उत्साहपूर्वक धर्मलाभ लेंगे। मुझ जैसे पुण्य हीनको यह लाभ कहां ?

अधिक क्या लिखूं ! विकल्पोंको तो धधकती हुई भट्टीके योगोंका निमित्त है व इस मध्ये ही रहना हो रहा है। जबकि चैतन्यमूर्ति विकल्पोंको छूनेवाली भी नहीं है। अधूरी दशाके विकल्पांशोंमें श्रद्धामें जमी हुई इस मूर्त्तिका एक रस आलिंगन कहां। चैतन्यमूर्तिके एक रसमें ओत-प्रोत रहें ! यह ही भावना।

धर्मस्नेही

❀ निहालचन्द्र

(३०)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता ७

८-११-६२

आत्मार्थी......शुद्धात्म सत्कार !

वात्सल्यानुराग प्रेरित आपका पत्र-कुटुम्बियोका दीपावली कार्ड मिला। श्री सेठियाजी सोनगढ पहुंचे जाना ! ज्ञानानन्दी गढ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीतराग प्रधानी श्री गुरुदेवकी प्रशस्त राग अंश निमित्तक सिंह गर्जनाए सु ४७ नययोग पर पुण्यवान मुमुक्षुओंको उल्लासित प्रवचनोंका लाभ हुआ-जानकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। पुण्य-अभाव योगसे इस अवसरसे मुझे वंचित होना पड़ा, इसका खेद रहा। श्री गुरुदेवके प्रवचनोका मुख्य सार मैंने यह लिया है।

वर्त्तमानमें ही परिपूर्ण हूं। वर्त्तमानसे ही देवादिक पर अथवा उन आश्रित रागसे किंचितमात्र लाभका कारण नहीं। लाभ मानना ही अलाभ है। वेदनके अलावा अब कोई क्रिया जीवकी नहीं। शरीर आश्रित अथवा अन्य पर आश्रित आकुलित वेदनको सम-काले ज्ञान वेदन द्वारा गौण करते-करते नाश करना मुमुक्षुओंका ध्येय है। यह ज्ञान वेदन अखण्ड त्रिकाली अपरिणामी ध्रुव अस्तित्वमयी स्व-पनेको अनुभवमें सहज ही उदय होता है। रागसे भेद करता निशंकित निराकुल सुख वेदनके साथ प्रत्यक्ष प्रमाणरूप प्रगट होता है। वृद्धि पामता-पामता अनन्त सुख व ज्ञानका लाभ करता है। अप्रसिद्ध अवेदक मुख्य अखण्ड स्वभावमें श्रद्धाके स्वअस्तित्व रूपमें प्रसरते ही प्रसिद्ध वेदन गौण होकर एक ही काल त्रिकाली व वर्त्तमान दोनों भावोंका अनुभव होता है। यह ही भेद-ज्ञान है। रागसे पृथक् ज्ञानका अनुभव ऐसे ही होता है अन्यथा नहीं।

योग होनेसे Aprilमें श्रीगुरुदेवकी जन्मतिथी पर मिलना होगा।

शुद्धात्मस्नेही
निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३१)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता
८-११-६२

आत्मार्थी......सोनगढसे शुद्धात्म सत्कार।

आपका दीपावली कार्ड तत्पश्चात पत्र मिला! समझ नहीं आता क्या लिखूं। उत्कृष्ट पुण्य योगसे, ज्ञान आनन्दकी खान अपूर्व सत् पुरुष श्री गुरुदेव निमित्तरूपे आपके समीप है। जिनकी निरन्तर ध्वनिका संकेत उनकी ओरसे लक्ष्य हटाकर स्वकी अन्तरंग खानका लक्ष्य कराता है। जहांसे यथार्थ न्याय सुख आदि उघड़ते रहते हैं। अतः स्वअस्तित्वमयी त्रिकाली आत्मामें पसर कर सुखा-स्वादन करो! जिस स्वादके वशीभूत देवादिक प्रत्ये भी उदासीनता होने लगती है। इनमें अर्थात् परमें एकान्ते रस व जागृति होना स्वभावके अरसपणेका सूचक है। वर्त्तमानमें ही मैं परिपूर्ण सुखका सागर हूं। वर्त्तमानमें ही देवादिकसे अथवा इन आश्रित रागसे किंचित लाभ नहीं। लाभ मानना ही स्वका अलाभ है। यह न्याय तीरकी तौर बाह्य वृत्ति लक्ष्य प्रति असर करे तो वर्त्तमानमें ही स्वभावोन्मुख प्रयत्न होवे।

भाईका दीपावली कार्ड मिला—उन्हें व अन्य भाईयोंको धर्मस्नेह।

शुद्धात्मस्नेही,
निहालचन्द्र

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३२)

कलकत्ता
१५-११-१९६२

श्री सेठीजी साहब, सादर-जयजिनेन्द्र।

आपका ता. १२-११-६२का पत्र मिला। अन्य लोगोंके चरित्र-निर्माण सम्बन्धी आपका दृष्टिकोण ख्यालमें रखते नीचे स्पष्टीकरण लिखा है।

१. प्रथम तो मैं क्या हूं व क्या कर सकता हूं इसका यथार्थ खुलासा होने पर कार्यकी यथार्थ सीमा बंध सकेगी। मैं आत्मा हूं व परिणामका करना और उस ही परिणामको भोगना यह ही मात्र आत्माकी क्रिया है, इसके विपरीत स्वयंके जड़ शरीर आदिका व अन्य आत्माका परिणाम मैं आत्मा नहीं कर सकता कारण जड़के परिणामका कर्त्ता जड़ द्रव्य है व अन्य आत्माके परिणामका कर्त्ता वह आत्मा द्रव्य है (उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तसत्)।

२. उक्त प्रकारका यथार्थ निर्णय हुए बाद पर-परिणामके किंचित भी कर्त्तापनेका अभिप्राय टूट जाता है-मैं परका कुछ-कर ही नहीं सकता तब पराश्रित परिणाम क्यो करुं जो कि स्वयं आकुलतामय ही होते हैं। इन परिणामोंको स्व-आश्रित करूं तो शुद्ध ज्ञान आनन्द व शान्तिमय परिणाम होंगे व इनहीका भोगना होगा जो कि वांछनीय है।

३. स्व में अर्थात् ज्ञान, आनंद आदि गुणोंके भंडार आत्मामें परिणामोंको पसारते ही साधकपणा व मुनिपणा आदि क्रमपूर्वक आता है-परिणामोंके इस प्रकारके प्रसरणमें ही यथार्थ ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुखादिका अनुभव उत्पन्न होने लगता है जिसकी प्रत्यक्षतासे पराश्रित आकुलित परिणाम प्रत्यक्ष विषरूप मालूम होने लगते हैं जो कि सम्यक्दृष्टि साधक व मुनियोंको एक समय मात्रके लिये भी नहीं रूचते।

४. उक्त मान्यता व तद्रूप अनुभव होने पर अनादिसे चला आया दृष्टिका मोह टूटता है। दृष्टिने जिस स्व अखंड स्व आत्माको लक्ष किया उसमें एक साथ परिपूर्ण परिणामका प्रसरण नहीं होता तब तक परिणामका कुछ अंश अखंडके साथ सुखरूप परिणमता है व उसही परिणामका कुछ अंश उदयके साथ पराश्रित दुखरूप परिणमता है। साधक व मुनिके इस प्रकारका पराश्रित परिणमा हुआ राग अंश उपदेशादिकका कारण होता है। यह राग अंश चरित्र मोह है, आकुलतामयी है—यह हर समय हेय है प्रत्यक्ष दुःखरूप है जो कि मुनियोंको बिल्कुल रुचता नहीं व इसमें उन्हें रस आता नहीं। पुरुषार्थकी निर्बलतासे अखंड आत्माकी पूरी पकड़ चारित्र परिणाममें नहीं होनेसे ऐसा राग अंश होता है जिसका निषेध प्रति समय उनकी दृष्टि करती रहती है। एक समयके लिये भी चरित्र मोह स्वरूपी राग अंशको वह अपना कर्त्तव्य नहीं समझते जो कि प्रत्यक्ष दुःखरुप है। अतः बारंबार स्वमें स्थित होते हुए राग अंशको तोड़ते हुए वह शुद्ध सिद्धरूप हो जाते हैं।

५. मुनियोंके रागांश निमित्तक उपदेशमें उक्त आशयका संकेत होता है। अच्छी होनहार वाले जीवके वह निमित्तरूप पड़ता है और वह स्वयं भी उपदेशादिककी तरफसे लक्ष हटाता हुआ, उपदेश आदिको मुनियोंका कर्त्तव्य नहीं समझता हुआ, उनकी अस्थिरताका दोष समझता हुआ उनपरसे वृत्ति हटाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वज्ञानकी खानमें प्रवेश करने लगता है। अरिहंतोंके उपदेशोंमें निमित्त उनका राग नहीं है वरन् कम्पनकी अस्थिरता है।

६. राग व वीतराग दोनों कर्त्तव्य नहीं हो सकते कारण दोनों भाव परस्पर विरूद्ध हैं। अतः अन्यके चरित्र निर्माणके कर्त्तव्यमें वीतरागी कर्त्तव्यका सहज ही अभाव है साथ ही अन्यके परिणामका कोई कर्त्ता हो ही नहीं सकता चाहे मान्यता बनाकर स्वयं दुःखी होता रहे।

७. एक बार प्रथम सम्यक्तो अधिगमज उपदेशके निमित्तसे ही होता है। दूसरे भवमें उन संस्कारोंके निमित्तसे बिना उपदेश सम्यक्त्व प्राप्त करनेको नैसर्गिक कहते हैं। परन्तु स्वयं पराश्रित दृष्टि हटाकर स्वआश्रित परिणाम करे तो उपदेशको निमित्त कहा जाता हैं कर्त्ता नहीं। जिसकी योग्यता होवे उसको निमित्त नैमेनिक संबंधका सहज ही योग होता है, ऐसा नि. नै. संबंध अनादिसे चला आता है व चलता रहेगा।

आशा है मुनियोंके उपदेश सम्बन्धी विषयके उपरोक्त स्पष्टीकरणसे मेरा दृष्टिकोण आपके लक्षमें आयेगा। दृष्टिदोष हटे बाद मुनियोंको उपदेशका राग उनकी अस्थिरताका दोष है, कर्त्तव्य नहीं व इस दोषको स्थिरताका प्रयत्न करते-करते वह हटाते जाते हैं-कर्त्तव्य समझ कर रखना नहीं चाहते।

आपका प्रोग्राम लिखें व पत्र देवें।

शुभैषी

निहालचन्द्र सोगानी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३३)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः ।

कलकत्ता
९-१२-६२

आत्मार्थी......धर्म-स्नेह

पत्र ता. २२-११ का यथा समय मिला। अस्थिरतासे देवादिक प्रत्येके परिणामोंमें खेद वर्त्तते व अखण्डके सद्‌भावरूप परिणमन होते हुए धर्मी जीवकी बुद्धिपूर्वक देवादिक प्रत्ये स्वरूप दृढ़ीभूत करनेके आशयकी प्रवृत्ति मुख्यरूपसे होती रहती है ऐसा दिखता है इस पर विशेष स्पष्टिकरण चाहा सो निम्न है :—

१. स्वरूपकी दृढ़ता देवादिक प्रत्येकी वृत्तिसे निश्चय ही नहीं होती।

२. मन आश्रित (विचारपूर्वक) मान्यतासे यथार्थ अखण्ड आश्रित सहज आंशिक वृत्तिका सद्‌भाव नहीं हो सकता।

३. त्रिकाली अस्तित्वमयी स्व, इस आश्रित परिणमी हुई आंशिक शुद्ध वृत्ति, व देवादिक प्रत्येकी आंशिक बाह्य वृत्ति, तीनों अंशोंका एक ही समय धर्मीको अनुभव होता है, जिसमें मुख्य गौणका प्रश्न नहीं।

४. स्वके मापसे अन्यका माप किया जाता है। मैं त्रिकाली ही हूं, इस अनुभवमें परिणाम गौण है-चाहे बुद्धिपूर्वक हो या अबुद्धिपूर्वक। ऐसे धर्मीको कभी परिणामकी मुख्यता नहीं होती। अतः उससे अन्य धर्मी जीवमें भी परिणामके मुख्यता नहीं दिखाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दती। जैसे कि मात्र परिणाम देखनेवालेको प्रवृत्तिकी मुख्यता दिखती है।

५. धर्मी, अधर्मीके भी त्रिकाली व वर्त्तमान दोनों एक साथ दिखता है। त्रिकालीका अभाव होनेसे अधर्मी परिणाम मात्रमें एकत्त्व होता रहता है। धर्मीको इसका ज्ञान रहता है।

६. वृत्ति अपेक्षा त्रिकालीकी मुख्यतावाले धर्मीके सहज ही इस मुख्य आश्रित वृत्तिकी ही मुख्यता रहती है—वर्तती है चाहे बाह्य अंशमें बुद्धिपूर्वक प्रवृत्ति हो।

७. त्रिकाली तो प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप परिणामका ही कर्त्ता नहीं है। परिणामका कर्त्ता परिणाम ही है, यह अपेक्षा भी अपनी चर्चा में आई थी।

धर्मस्नेही

❀ सोगानी

(३४)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

३०-१२-६२

धर्मस्नेही...शुद्धात्म सत्कार।

आपका ता. २४-११ का पत्र मिला।

आपने वांचन विचार वास्ते लिखा सो त्रिकाली अखण्ड ज्ञानानन्द स्वभावमें अस्तित्वरुपी श्रद्धाकी यथार्थ व्यापकता निरन्तर कायम रहे-जहां के अनुभवमें परिणाम मात्रके अकर्त्तापनेका सहज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभव होता रहे–परिणामका कर्त्ता परिणाम अंश है, मैं त्रिकाली अंश नहीं।

इस प्रकारके एक ही समयमें परिणामका कर्त्ता व अकर्त्तापनेके अनुभवकी वृद्धि होते २ पूर्ण ज्ञानका सहज ही अनुभव होगा, यही वांचन व विचारना है।

आशा है आप भी आत्म स्वास्थमें सहज वृद्धि करते रहेंगे। यहां योग्य कार्य लिखें।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

(३५)

कलकत्ता

२१-१-६३

आदरणीय श्री सेठीजी सा; सादर-जयजिनेन्द्र।

आशा है आप वहां कुशल होंगे, कुछ दिनों पहले आपका कार्ड यथासमय मिला था। आशा है अध्ययन आदि चल रहा होगा। Retired Life में पहले के मुकाबिले मानसिक बोझा हल्का महसूस करते होंगे। सोनगढ़की ओर भी जानेका प्रोग्राम कब तकका है? धार्मिक ग्रंथोंमें किन-किन ग्रंथोंका स्वाध्याय चल रहा है।

ज्ञान भंडार आत्मामें से ज्ञान उघड़ता रहता है, शास्त्रोंसे नहीं यह अलौकिक सिद्धान्त विचारणीय है। उत्तर क्षणमें क्या परिणाम होगा उसका वर्त्तमान क्षणमें हमें ज्ञान नहीं तो भविष्यके लिये क्यों व्यर्थकी कल्पना परिणामके अलावा शरीरादिककी क्रियामें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो हमारा कोई कर्तृत्व है ही नहीं तो फिर इनके आश्रित विभाव परिणामोंका व्यर्थ क्यों बोझा लादा जाये। उद्देश्यका निर्णय करना सहज ! पर उसकी प्राप्तिमें समय अधिक लगता है। यथार्थ निर्णयके बाद ही यथार्थकी प्राप्ति होती है। अनुभूति ही यथार्थ निर्णयकी निशंकता बता सकती है। चूंकि आपका समय अब अध्यात्मकी तरफ अधिक लगेगा अतः चन्द बातें ऊपर सहज ही लिखी गई हैं। आगेका प्रोग्राम लिखें।

शुभैषी

❀ निहालचन्द्र सोगानी

(३६)

ॐ

श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

२७-२-६३

आत्मार्थीसे......धर्मस्नेह, सोनगढ।

मालूम होता है कारणवशात् निहालभाईके क्षणिक व्यवहारसे विरक्ति हो गई है। विरक्ति तो सदैव उपादेय ही है व सहज विरक्ति मुमुक्षुओंका ध्येय भी है।

पू. गुरुदेव श्री की आंखमें नीडलींगकी आवश्यकता नहीं रही जानकर आनन्द हुआ। व पूज्य श्री का फाल्गुन सुद ६ से तीन माह वास्ते सौराष्ट्रमें विहार होगा, जाना। पुण्य योग होनेसे उनके दर्शन, प्रवचनका पुनः लाभ मिल सकेगा।

आपकी दी हुई 'बनारसी विलास' पुस्तकका वांचन चल रहा है। लिखा है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'एक निगोद शरीरमें ऐते जीव बखान,
तीन कालके सिद्ध सब एक अंश परिमान।'

"सो पिण्ड निगोद अनन्तरास, जिव रूप अनन्तानन्त भास,
भर रहे लोक नभमें सदीव, ज्यों घड़ा मांहि भर रहे घीव।"

केवली गम्य यह अनन्तता साधकके अनुमान गम्य ज्ञानमें प्रत्यक्षवत् है। निष्कम्प गम्भीर ध्रुव स्वभाव आश्रये सहज ऊंडे-ऊंडे उतरते-उतरते यह ज्ञान हम सबको प्रत्यक्ष होवे। यह ही भावना।

धर्मस्नेही
निहालभाई

❀

(३७)

कलकत्ता
११-३-६३

श्री सेठीजी सा; सादर जयजिनेन्द्र।

आपका पत्र मिला था। आशा है अब आप बिल्कुल ठीक होंगे। 'ज्ञान ज्ञेय स्वभाव' पुस्तक अच्छी है। अखंड त्रिकाली ज्ञान स्वभावको ज्ञेय बनाकर इस आश्रयमें एकाग्र हुआ ज्ञान परिणाम विभाव अंशसे भिन्न रहता हुआ, विभावको परज्ञेयकी तरह जानता देखता है। यह ही भेदज्ञान है। साधकको एक ही समयमें एक ही परिणाममें दोनों प्रकारका भिन्न अनुभव होता है। व अनाकुल ज्ञान भावका आकुलित विभाव अंशसे पृथक स्वादका प्रत्यक्ष अन्तर भासित होता है।

सोनगढ़से अभी गुरूदेव राजकोट गये हुए हैं, कमसे कम एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

माह तक आप उनके नजदीक रहनेका प्रोग्राम बना लेवें तो अत्यधिक सार्थक होगा।

यहां योग्य कार्य। शुभैषी

निहालचन्द्र

❀

(३८)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

बम्बई

१३-४-६३

धर्मस्नेही...शुद्धात्म सत्कार।

मैं एक सप्ताहसे बम्बई आया हूं।

सौराष्ट्रमें मेरा फिलहाल आना नहीं हो सकेगा। अभी तो कलकत्ता ही रहना होता दिखता है। आपका उधर कोई कार्यवश आना होवे तो मैं आशा करता हूं मैं अवश्य आपसे मिल सकूंगा। आप आनेकी सूचना कलकत्ता लिख देवें। यदि मेरा अजमेर, देहलीकी तरफ आना होगा तो मैं अवश्य आपसे मिलूंगा। बाह्य निमित्त आश्रित निजभावसे कोइ भी लाभ नहीं होता है। यह सिद्धान्त लक्ष्यमें रखकर निज त्रिकाली अपने स्थित स्वभावमें ही परिणति स्थित होती जावे, ऐसी अनुभूति प्राप्त होना श्रेयस्कर है। अभी जल्दीमें पत्र बन्द करना पड रहा है।

आपका वात्सल्ययुक्त अनुराग भरे पत्रको देखकर कुछ धार्मिक विषयपर भी लिखता, परन्तु आज जानेके पहिले जल्दी है। अतः फिर कभी लिखना हो सकेगा। धर्मस्नेही

❀

निहालचन्द्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३९)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः ।

कलकत्ता

२०-४-६३

आत्मार्थी...शुद्धात्म-सत्कार !

पत्र ता. १७-४ का आपका मिला। अलौकिक पूज्य गुरुदेवके दर्शनार्थ आप जोरावरनगर, दहेगांव आदि जा रहे है, जानकर चित्त प्रसन्न हुआ। दहेगांवके श्री भीखाभाई मुझे मिले। वहां पहुंचने वास्ते उनका आग्रह भी था। पुण्ययोगसे ही श्री गुरुदेवके सान्निध्य रहना होता है।

निशंक निर्णयके लिये किस प्रकार रटन, पुरुषार्थ आदि होना चाहिए। सो अपने अस्तित्वकी यथार्थ समझमें सब बातें गर्भित है। प्रमाण ज्ञानका विषय नित्य व अनित्य अथवा त्रिकाली ध्रुव व क्षणिक परिणामी वस्तु एक ही साथ मैं हूं। दोनों प्रकारका अनुभव एक ही समय होने पर निशंकता हो जाती है। संसारी जीवको कर्त्तत्व-भोगतृत्व रूप मात्र परिणामके वेदनकी प्रसिद्धि है। उस ही समय त्रिकाली रूप स्व अस्तित्वकी नहीं।

परिणाममेंसे अस्तित्वपणेकी श्रद्धा हटाकर त्रिकाली ज्ञानानन्द आदि अनन्त गुणोंके देहाकार असंख्यात प्रदेशी निजपणेमें श्रद्धाकी पर्यायको एकाकार व्यापक करते ही नित्यपणेका, निज अस्तित्वपणे का प्रति समय अनुभव होता है।

अपरिणामी नित्य त्रिकाली ध्रुव बिम्ब मैं हूं-" क्षणिक परिणाम नहीं यह श्रद्धाका विषय है। श्रद्धा एक ही समयमें पूर्ण त्रिकालीको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पकड़कर अभेद हो जाती है। यहां अस्तित्वकी स्थापना होते ही मैं परिणामके साथ नहीं परिणमता। परिणामका कर्त्ता परिणाम ही है, मैं तो अपरिणामी वर्त्तमानमें ही परिपूर्ण हूं। वर्त्तमानसे ही मुझे कुछ करना कराना नहीं है। रटन पुरुषार्थ ज्ञान आदि सब परिणाम है। इनसे मुझे लाभ हानि नहीं। मेरी अपेक्षासे यह स्वयं होते है। मैं अविचल हूं। इन परिणामोंसे विचलित नहीं होता। इनसे पृथक् व अधिक हूं। अपेक्षासे मेरे गर्भमें होते हैं। पण मैं इनमें एकमेक नहीं होता। दर्पणका त्रिकाली दल एक समयकी दर्पणाकार पर्यायसे भिन्न ही रहता है। दोनों कार्य एक समयमें हैं। यदि दल एक समयके आकार-पर्यायमें आ जाये तो त्रिकालीपणेका नाश हो जाता है। अतः त्रिकाली ध्रुव नित्य वस्तुमें अपने-अस्तित्वपणेमें श्रद्धाकी व्यापकता करते ही सब कार्य सहज स्वभावरूप अनुभव होने लगता है। वर्त्तमानसे ही मुझे कुछ नहीं करना है ऐसे मैं पणे की यथार्थ अभेद प्रतीति होते ही चारित्र पुरुषार्थ आदिके सब परिणाम सहज ही 'मैं त्रिकाली'का अनुसरण करने लगते हैं, व शुद्ध होने लगते हैं। परिणामोंमें उलट-फेर करनेकी दृष्टि असम्यक् है। इस क्रियासे जब ही हट सकते हैं कि इनसे भिन्न अपरिणामी वस्तुमें निश्चल रूप वस्तुमें निश्चल रहें। निश्चय स्व-सत्का संग होना ही पूज्य सद्गुरुदेवके संगका फल होना चाहिये। वर्त्तमानमें ही परिपूर्ण हूं तो वर्त्तमानसे ही किसीसे भी लाभ और नुकसान नहीं है।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४०)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

८-७-१९६३

आत्मार्थी......शुद्धात्म सत्कार।

आपके पत्र दहेगांव व देहली दोनों स्थानोंसे मिले। मैं करीब एक माहसे बाहर था। पन्द्रह दिन करीब बम्बई भी रहना हुआ। पुण्य योगके अभावसे महाराज सा.का सोनगढ़ लौटनेका प्रोग्राम लम्बानेसे सोनगढ़ जानेका सोचा हुआ मेरा प्रोग्रास रूक गया। आपके हर पत्रके साथ पतेका लिफाफा खाली भिजवाते हो। अब ऐसे नहीं भेजें। पता मैंने नोट कर लिया है लिखनेका विकल्प ओछा होनेसे जवाबमें देर होती है। परन्तु लिखना विकल्प होना क्रियायें तो मुमुओंको हेय बुद्धिसे सदैव सहज गौण ही रहती है। यह क्रियायें तो आचार्योंने उन्मतोंकी कही है। पत्र बहुत ही विनय-भरे आते हैं। विनयभावोंका एकान्त वेदन नहीं होना चाहिये। सहज सामर्थ्यमें पसरनेसे स्वरूपके बलसे सहज ही परिणामोंमें नहीं घसीटी जेंगे; वह परिणामोंका वेदन ज्ञायकभावकी मुख्यतामें हेय बुद्धिए गौण (क्षणैः क्षणैः) होता जायगा। पराश्रित विनयभाव दुःखभाव है उपादेय कैसे होवे?

द्वादशांगका सार तो श्री गुरुदेवने फरमाया है कि वर्त्तमानमें ही मूल कायमी त्रिकाली ध्रुव स्वभाव परिणामोंका विश्रामधाम मैं हूं। इस स्थानमें दृष्टि पसार कर, स्वयं व्यापक होकर परिणामोंकी पकड़ छोड़ दो, इन्हें सहज ही परिणमने दो, इनमें अटको नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणमन स्वभावके समय ही अपरिणामी स्वभाव भी साथ ही साथ है। इस अपरिणामी स्वभावको नित्य पकड़े रहो, यहां जमे रहो, इसके बिना निस्तार नहीं है। पत्रादिकका आधार, शास्त्राधार, अरे! प्रत्यक्ष तीर्थंकरके आधार बुद्धि भी स्वयं वर्त्तमान सामर्थ्यका अनादर करनेवाली है। ऐसा कह कर ही परम कृपालु गुरुदेवने वर्त्तमानसे ही उनपरसे दृष्टि हटा कर अघट घट् त्रिकाली सदद्रय सामान्य स्वरूपमें अपना अड्डा जमा कर निश्चल विराजनेको कहा है। उनके ऐसे सिंहनाद रूप उपदेशको पाकर भी फिर दीनता क्यों? वर्त्तमानमें ही अपने सिंह स्वभावको अनन्त शक्तियोंके धामको संभालो! दीन विकल्प निराश्रय होकर टूटते जावेंगे, जड़ कर्म बिखरते जावेंगे। सुख शान्तिका प्रत्यक्ष वेदन क्षणे-क्षणे बढ़ता जावेगा।

बम्बईमें नागरभाई आदि मुमुक्षुओंसे भी मिलना हुआ था। आपका जिक्र भी आया था।

निरन्तर अविच्छिन्न धाराएं स्व स्वरूप सुखमें मग्न रहो। इससे च्युत करानेवाले विकल्प विशेष-२ मग्नता होते-होते ढ़ीले पड़ते पड़ते क्षय हो जावेंगे। ऐसा ही श्री गुरुदेवका अलौकिक उपदेश जयवंत वर्त्तो।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४१)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः ।

कलकत्ता
१४-७-६३

आत्मार्थीसे......शुद्धात्म सत्कार ।

गत माह आपका पत्र आयाथा, तब मुझे बम्बइमें यहांसे redircet होकर मिला था। ईस पहीले करीब जनवरीमें पत्र आया था।

तत्वदृष्टिए, स्वभाव बलमें जमतेही आना जाना व न आनाजाना जुदे ज्ञानमें सहज ही मोह भाव प्रति भासित होते हैं, यह मोहभाव त्रिकालीमें पौदगलिक ही है, तो इनकी पकड क्यों ? यह हमारे है ही नहिं। ऐसा ईनसे भिन्न अनुभव, मात्र हमारा लक्ष हो जाना चाहिए।

" भेद ज्ञानसे भ्रम गयो, नहिं रही कुछ आस,
धर्मदास क्षुल्लक कहे, तोड़ मोहकी फांस. "

पू. गुरुदेवके उपदेशका सार, द्वादशांगका सार, तो केवल एक ही है कि अपने त्रिकाली स्वभावमें जैसे तैसे भी होवे दृष्टि पसार कर विराजमान हो जाओ ! क्षणे २ पदे २ वितरागी ज्ञायक रसमें ऐसी मग्नता बढती जायेगी, जिसका विच्छेद एक क्षण भी नहिं गमेगा।

योग नहीं होनेसे, महाराज सा० का सोनगढ लोटनेका प्रोग्राम लंबाजानेसे, बम्बईसे सोनगढ आनेका मेरा प्रोग्राम बदला गया। पूण्य योग होने पर दशहरेके आसपास आनेका विकल्प है। आप सदैवानुसार पू. गुरुदेवश्रीकी अमृतवाणीका लक्ष्य लेते होंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसका तात्पर्य उनकी औरसे दृष्टि उठवाकर, पलटवा कर, निज अमर्यादित अमृत खानमें व्याप्त कराना है।

शेष मिलने पर।

सर्व संगके असंग होनेका ईच्छुक

❀ निहालचन्द्र

(४२)

ॐ

परमउपकारी श्री सद्गुरुदेवको वंदन।

कलकत्ता

२१-८-६३

धर्मस्नेही... ...से शुद्धात्मा सत्कार। सोनगढ

आपका पत्र आज मिला। परम उपकारी श्री गुरुदेव सुख शान्तिमें हैं व उनकी अमृतमयी धोधमार वाणीका आपलोग अपूर्व लाभ ले रहे हैं, जानकर सहज प्रसन्नता हुई।

आपका राजकोटवाला पत्र यथा समय मिल चुका था। बहुत उत्साह भरा था, परन्तु मेरा पुण्य ऐसा कहां कि पूज्य गुरूदेवकी वाणीका बारम्बार लाभ होवे। आपके पत्रोंमें मेरे वहां आनेके लिये ही मुख्यतया तीव्र अनुरोध रहता है। आनेकी योग्यता नहीं होती तो क्या जवाब दूं। सोनगढ आनेका लक्ष्य रखकर बम्बई तक आना हुआ, परन्तु महाराजश्रीके विहारसे लौटनेकी तिथिमें अकस्मात् बार-बार फेर पडा। अतः वापस बम्बईसे ही लौटना पड़ा।

आपका लिखना कि "सांसारिक विकल्प पण थाय छे, अने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्याय पण थाय छे निवृत्ति इच्छनारने मात्र सोनगढमां ही वास होय" आदि-इसका क्या अपेक्षित जवाब दूं। यहां तो पूज्य गुरुदेवने आत्मगढमें वास करा कर प्रसाद चखाया है। अतः क्षणिक विकल्प भी सहज विस्मरण होते रहते हैं। कहता हूं कि हे विकल्पांश! तेरे संग अनादिसे दुःख अनुभव करता आया हूं, अब तो पीछा छोड। यदि कुछ काल रहना ही चाहता है तो सर्वस्व देनेवाले परम उपकारी श्री गुरुदेवकी भक्ति-सेवा गुणानुवादमें ही उनके निकट ही वर्त्त! इस क्षेत्रमें तो अधिक दुःखदायी है। चूंकि गुरुदेवने इसकी उपेक्षा कराकर इससे विमुख करवा दिया। अतः यह भी लम्बाकर साथ नहीं देता।

"जैसो शिवखेत बसै, तैसो ब्रह्म यहां बसै,
यहां-वहां फेर नहीं, देखिये विचारके।"

मेरे प्रति आपका अनुराग ज्ञानमें है। पू. गुरुदेव कहते हैं कि तुम स्वयं अतीन्द्रिय चैतन्य ढीम हो! इस अगाध सागरका सहज अनुराग करो। पराश्रित अनुराग तो एकांते दुःख है। सुखाभासी होकर इसके रसको लम्बाना उचित नहीं। अपने तो एकान्त सहज ज्ञान सुखसे लबालब व ठसाठस चैतन्य ढीम बनकर जमे रहो। विकल्प व निर्विकल्प जैसी भी अवस्था होवे, होने दो।

"कर्त्ता, करम, क्रिया भेद नहीं भासतु है,
अकर्त्तृत्व शक्ति अखंड रीति धरै हैं।
याहीं के गवेषी होय, ज्ञान माहिं लखि लीजै,
याहीकी लखनी या अनन्त सुख भरे हैं।"

वहां ठहरने ठहरानेके विकल्प जालको लम्बानेसे क्या लाभ। विकल्पानुसार क्रिया होना आवश्यक तो नहीं। जैसा योग है, हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आयेगा। चिन्ता तो ओछी ही अच्छी। निकट भविष्यमें वहां आनेका विचार अवश्य है। परन्तु सदयकी टेव अनुसार प्रोग्राम अकस्मात ही बनता है। अतः समय लिखनेके अयोग्य हूं।

विकल्प रसमें अनुभव रसका अभाव है। एक की ओर झुककर लम्बानेसे दूसरेका अभाव होता।

"गुण अनन्तके रस सबै,
अनुभव रसके माहिं।
यात अनुभव सारिखौ,
और दूसरो माहिं"॥

विशेष मिलने पर।

असंगताका इच्छुक

❀

(४३)

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता
१०-९-६३

आत्मार्थी......

आपका कई दिनों पहले पत्र आया था। श्री पंचाध्यायीकी दर्शन ज्ञान विषयकी गाथाओंका जिक्र था। पुस्तकका यहां सहज योग नहीं हो सका। सोनगढ़में अपेक्षावत इस विषयकी समाधान चर्चा हुई है, ऐसा स्मृतिमें है। आपको वहां समाधान हो सकेगा, जानने पर खुलासा लिखें। चैतन्य प्रतिमा व चेतन परिणतिके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वतन्त्र अस्तित्वकी यथार्थ कबुलात कर चैतन्य प्रतिमामें अपना स्थापन करते ही परिणति प्रतिमाका आलिंगन करने लगती है, जो इष्ट है।

धर्मस्नेही

❀ निहालचन्द्र

(४४)

कलकत्ता

१०-९-६३

आत्मार्थी......

पत्र आपका ता. ३-९का मिला। पहले वाला पत्र भी यथा समय मिल गया था। दसलक्षणी पर्व, आपने तीन लोकमें परम उत्तम, निर्भय बनानेवाले, परम निर्भय, सिंह स्वरूप श्री गुरुदेवके सान्निध्यमें मनाये होंगे। वह कहते है—'स्वभाव अंशमें किंचित भी दोष नहीं है, नित्य स्वभावमें दृष्टि थंभ जानेसे उत्पन्न हुए सहज स्वभावमें क्षमा आदिके दूषित भाव प्रत्यक्ष पराश्रित (जडके) परके है। अतः सहज क्षमाभाव त्रिकाल जयवन्त वर्त्तो। हमने कभी दोष किया ही नहीं ऐसा स्वभाव निरन्तर वृद्धि पामो! विभावके गूंजमें गूंजता हुआ अज्ञानभाव सहज नाश पामो। विभावमें तनीजो नहिं, स्वभाव सीमामें निरन्तर अडिग जमे रहो। क्षणिक विभाव वेदीजता हुआ अधिकारकी सीमाको पार नहीं कर सकता। अतः वहीं लय हो जाता है—

'कर्त्ता कर्म क्रिया भेद नहीं भासतु है।
अकतृत्त्व शक्ति अखण्ड रीति धरै हैं॥
याहींके गवेषी होय ज्ञान माहिं लखि लीजै।
ज्ञानकी लखनी अनन्त सुख भरें हैं॥'

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान कणिका पत्र द्वारा मंगवाई सो यह तो आपके पास ही है। स्व अवलम्बनसे सहज ही विभावसे पृथक् होकर प्रगटती रहती है। हे शशीभाई ! अनेकानेक जीवोंकी योग्यता अक्षय सुखके उदयकी है। अतः तीर्थंकरसे भी अधिक सत् पुरुषका योग प्राप्त हुआ है। जिनकी नित्य प्रेरणा उधरसे विमुख कराकर स्वयंके नित्य भण्डार की और लक्ष्य कराती रहती है। यहांसे ही पूज्य गुरुदेवके न्याय अनुभव सिद्ध होकर दृढ़ता प्राप्त कराते है।

'जिन (निज) सुमरो जिन चिंतवो जिन ध्यावो शुमनैन।
जिन ध्यायंते परम पद, एलहिए एक क्षणैण॥'

वात्सल्यानुरागी

निहालचन्द्र

❀

(४५)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

२६-३-६२

आत्मार्थी......शुद्धात्म सत्कार।

आप लोगोंको तत्त्वकी स्वयंकी रुचि बढ रही है, अतः तत्त्व-चर्चामें प्रमोद होता है। जो पत्रमें लिखा है। अबतो सुनने सुनानेमें भी थकान मालूम होने लगे, ऐसी परिणति जागृत होनी चाहिए। सो नित्य सुखधाम स्व. क्षेत्रमें अडिग जमेत ही उत्पन्न एकान्त सहज-सुखमें प्रत्यक्ष अनुभव होगा। कुछ करना कराना नहीं है। मात्र स्व आस्तित्वमें दृष्टि पसारकर एकान्ते थंभ जाना है। ध्रुव ज्ञानानन्दमूर्त्ति अनन्त गुणोंकी खान हूं। परिणमन क्रियाएं सहज

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो रही हैं। प्रतिसमय नित्य व क्षणिक दोनों भावोंका एक ही समय सहज अनुभव वर्त्तता रहे, ऐसा परम उपकारी श्री गुरुदेवका वाच्य है। सो अभ्यास वर्तो। मात्र क्षणिक वेदन ही नहीं प्रतिभासो।

धर्मस्नेही
निहालचन्द्र

❀

(४६)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता
२७-९-६३

आत्मार्थी......से शुद्धात्म सत्कार।

श्री लालचंदभाईकी परिणतिमें मुख्यतया अध्यात्म मंथन चलता है। अभी बम्बईमें आए भाईयोंके पत्रमें भी पूर्व अवसरके उनके वहांके वांचनमें ऐसी परिणतिका जिक्र आया है। अतः चित्त प्रसन्न होता है। उन्हे डा. चन्दुभाई व अन्य सब मिलनेवाले साधर्मीभाईयोंसे मेरा धर्मस्नेह कहें।

यही भावना है कि परम उपकारी श्री गुरुदेवकी छत्रछायामें हम सब मुमुक्षु अपने नित्य स्व क्षेत्रमें अडिग जमे रहें। जिस (स्वधाम)की अपेक्षा परिणाम मात्र पर तत्त्व हैं। ऐसा होते ही नित्य व क्षणिक दोनों भावोंका अनुभव प्रतिसमय एक ही काल होता रहेगा, जो कि गुरुदेवका अभिप्राय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

"कर्त्ता कर्म क्रिया भेद नहीं भासतु है।
अकर्तृत्व शक्ति अखण्ड रीती धरै है॥
याही के गवेषी होय ज्ञान महिं लाखे लीजे।
ज्ञानकी लखनी या अनन्त सुख भरे है॥"

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

(४७)

ॐ

चैतन्यमूर्ति श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

१७-१०-६३

आत्मार्थीसे......शुद्धात्म सत्कार। सोनगढ

पत्र आपके समय-समय पर तीन मिले। अब मेरा शारीरिक स्वास्थ्य ठीक है। करीब १ माह पलंग पर रहना हूआ। चिन्ता अथवा राग तो स्वयंको हानिकारक है। स्व में अथवा पर में अकार्य-कारी है। अतः हर समय स्वभाव-बलसे सहज निषेधपूर्वक होते तो फल आदरणीय नहीं हो सकता।......

...इन दिनों साधर्मी भाईयोंका पत्र व्यवहार कुछ बढा है। परन्तु सहज विकल्प निमित्ते जवाव लिखीज जावे वह ही अच्छा है। अतः जवाब देरी आदिकी प्रतीक्षा अधिक नहीं रखना ही अच्छा है।

आशा है परम उपकारी श्री सद्गुरुदेव सुख-शान्तिमें विराजते होंगे। इस माहके गुजराती आत्मधर्ममें अनुभव रसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भीगी हुई वाणी व प्रसन्न मुद्रा देखकर चित्त डोल उठा। आपने फरमाया है—

'अमारोके. ज्ञाननो ध्वज फरकी रह्यो छे-के. ज्ञाननो झंडो फरकावता-फरकावता आज काले मोक्षमें जाशुं।' इन वचनोको वारम्बार रस लेकर भी तृप्ति नहीं हूई।

अधिक क्या लिखूं। पू. गुरुदेव कहते हैं कि-"ज्ञानीने रागादि भावो पोताना स्वभावपणे जरापण भासता नथी, स्वरुपनी बाहर ज भासे छे" यही वेदन हम सबको दृढतर होता जावे यह ही भावना।

धर्मस्नेही

निहालचन्द्र

❀

(४८)

कलकत्ता

२३-१२-६३

आत्मोन्मुखी......से शुद्धात्म सत्कार।

यहां पहुंचने पर आया हुआ पत्र देखा। भगवान श्री जयसेन आचार्यकी गाथा ३३८-३९ की टीकामें से अपरिणामी सम्बन्धी लाइने आपने उधृत कर लिखी उन्हें वचांकर बहुत ही प्रमोद हूआ।

सांख्यानुसारी शिष्य अभिप्रायमें निश्चय व्यवहारमयी आखे प्रमाणरुप अनेकान्त स्वरुप द्रव्यके, एकान्ते अपरिणामी समझकर, जैनागममें भी शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे जीवको अपरिणामी कहा गया है। ऐसा कहता हैं। जिसका समाधान आचार्यदेवने किया है। 'परन्तु व्यवहार नयसे परिणामी है' शुद्ध द्रव्यार्थिक नयसे अपरिणामी है। इस बातको रखकर व्यवहार अंग नहीं समझनेवाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शिष्यको 'परन्तु' शब्द मुकक्कर परिणमन रूप व्यवहार भी है। बताया है। 'निष्क्रिय' भाव व शब्दके लिये आपने आचार्यश्रीकी गाथा ३२० की टीका वहां बताईथी व पू. गुरुदेवश्रीके मुखारविन्दसे सोनगढमें भी रात्रि चर्चा समय इसका स्पष्टीकरण हुआ था। इस प्रकार निष्क्रिय व अपरिणामी, त्रिकाली-सद्द्रव्य परम शुद्धनयका विषय; दृष्टिका विषय द्रव्य मैं हूं, इसका आगम आधार तपास कर आपने बताया, इससे बहुत आनन्द हुआ।

श्री योगीन्द्रदेवके परमात्मप्रकाश श्लोक नं. ६८ पर श्री ब्रह्मदेवकी टीका पं. दोलतरामजीके अनुवाद सहित को शीघ्र देखुंगा। साथ ही श्री जयसेन आचार्यकी टीका प्रति यदि यहां मिल गई तो उक्त गाथा सहित पूरी देखनेका विचार है। जो कि पहले मेरी देखी हुई नहीं है।

अत्रुटक भावे सहजानन्दमें मग्न रहो यह ही भावना है।

मोक्षेच्छुक

निहालचन्द्र

❀

(४९)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता

२७-१२-६३

आत्मार्थी...शुद्धात्म-सत्कार।

आपका पत्र यथासमय मिला था। कई प्रकारके प्रश्न लिखे, जिन सम्बन्धित योग्यतानुसार संक्षिप्त खुलासा लिखता हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१. स्व द्रव्यसे, परसे, अथवा क्षणिक योग्यतासे, ज्ञान सर्व समाधानोंका भण्डार त्रिकाली चैतन्य द्रव्य वर्त्तमानमें ही हूं, इसमें दृष्टि अभेद होते ही प्रश्न रुप विकल्पकी विकल्पांशसे जुदा स्व-आश्रित सहज जानन क्रिया होती है। वह क्रिया स्वयं ही समाधान रुप है। जिसमें प्रश्न लम्बानेका अभिप्राय नहीं रहता।

यथार्थ उक्त दृष्टि पश्चात योग्यताका वास्तविक भाव समझमें आता है। योग्यता स्वयं सत् अहेतू है जिसमें न स्व द्रव्यका कारण है न पर कारण। यह अपरिणामी द्रव्य-दृष्टि समय-समयकी योग्यतामें फेरफारकी बुद्धि नहीं रखती व योग्यता भी दृष्टिके अभेद विषयकी ओर समय-समय वृद्धिगत उन्मुख होते-होते पूर्ण समाधान रुप अभेद हो जावेगी। ऐसी निशंक प्रतीति इस दृष्टिमें गर्भित है।

मुनिराज आचार्य भगवानके पास समाधान हेतू जाते हैं। उस समय भी प्रश्न विकल्पसे छिटकी हुई जानन क्रिया उनको वर्त्तती रहती है। परन्तु रूचासरुप अशक्तिके कारण प्रश्न विकल्प क्षणिक लम्बानेकी क्रिया होती है। समाधान बाह्यसे होगा ही अथवा होना ही चाहिए ऐसा अभिप्राय मुनिश्रीके प्रश्न विकल्प समय नहीं वर्त्तता।

२. श्रद्धा व ज्ञान—

श्रद्धा व ज्ञान भिन्न-भिन्न गुणकी स्वतन्त्र एक ही काले अहेतू पर्यायें है। मृतक वेश्याका चित्र दृष्टान्तरुपे पुस्तकोंमें है। भिन्न-भिन्न श्रद्धावाले चार जीवोंका ज्ञानमय निमित्तरुप तो एक ही विषय है परन्तु श्रद्धान भिन्न-भिन्न प्रकारका होनेसे भिन्न-भिन्न परिणति है। निश्चयसे एक जीवको एकही काले श्रद्धा व ज्ञानकी स्वतन्त्र अहेतुक परिणति होती है जो कि एक दूसरे को अकारणीय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कार्य होने पर ज्ञान श्रद्धानका कारण हुआ अथवा श्रद्धान ज्ञानका कारण हुआ ऐसा सम्बन्ध बताया जाता है। ११ अंगधारी मिथ्या-दृष्टि धारणामें तत्त्वको परोक्षरूपे यथार्थ जानता है। परन्तु श्रद्धाकी पर्यायमें रुचिमें उनको अभेद पकड कर प्रत्यक्ष नहीं करता। दृष्टि मिथ्या बनी रहती है।

३. पुरुषार्थ—

स्वरुपनी प्यास–प्यास स्वयं पर्याय स्वभाव है। वीर्य गुणकी पर्यायमें सदैव पुरुषार्थ होता रहता है। नित्य सहज त्रिकाली द्रव्यमें दृष्टि अभेद होने पर जो पुरुषार्थ होता रहता है वह स्वआश्रित सहज ज्ञानानन्दी पुरुषार्थ रुप पर्याय स्वभाव है। विकल्पात्मक पुरुषार्थ असहज कृत्रिम पुरुषार्थ है। सहज द्रव्य स्वभावकी अरुचि होनेसे पर्यायमें सहज पुरुषार्थ नहीं उघडता। अतः मिथ्यादृष्टि नियतवादी एकान्ते कृत्रिम पुरुषार्थ करता रहता है। इस ही कारण 'थवानुं हशे तेम थशे' इस आशयको कहनेका वह यथार्थ अधिकारी नहीं है। उसके अभिप्रायमें फेरफारकी बुद्धि तो पडी रहती है। उसकी स्वतन्त्र योग्यता निरन्तर परावलम्बी वर्तती रहती है व उसे उसमें उत्साह बढता रहता है। यह बात स्व-द्रव्य अवलम्बन करनवाला यथार्थ जानता है।

४. संसारी जीव स्व–रुचि अनुसार अपनी रसपूर्त्ति के हतु अमुक पर को इष्ट जानता है। अतः इष्ट प्राप्तिमें बाधक कारणोंसे द्वेष करता है। इसका कारण मात्र परावलम्बी रुचि ही है अन्य नहीं।

हम सब नित्य स्वका संगरुप वर्त्तन करें यह ही भावना है।

निहालचन्द्र

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६०)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः।

कलकत्ता
२-१-६४

आत्मार्थी......शुद्धात्म सत्कार।

आपका ता. १८-१२-६३ का पत्र यथासमय मिला था। मैं यहां १६-१२ को वापस पहुंचा था। मार्गमें अधिक रुकनेसे दिल्ली नहीं ठहर सका था।

नित्य शुद्धात्म-स्वभावमें दृष्टि अभेदकर, तादात्म्यकर, निर्विकल्पकर सहज अहमपणेसे स्वमूर्त्तिकी स्थापना करो। देह, मन, वाणी, राग व क्षायक क्षणिक भावसे भी पार सूक्ष्म अति सूक्ष्म सामान्य द्रव्यमयी गठरीरुप होकर जमे रहो! इस नित्यबलकी अधिकायीसे क्षणिक परिणाममें खिसको नहीं। ज्ञान रागसे सहज पृथक होकर क्षणै-क्षणै वृद्धिगत होते होते पूर्ण उघड जावेगा। ऐसे पूज्य गुरुदेवश्रीके आशयको यथार्थ परिणमित करदेना हम सर्व मुमुक्षुओंका सदा सुखानुभवी कर्त्तव्य है।

महाआनन्दका नित्य भोगवटा रहे यही भावना है।

मोक्षेच्छुक
निहालचन्द्र

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५१)

ॐ

श्री सद्गुरुदेवाय नमः ।

कलकत्ता
२०-२-६४

आत्मार्थी......से शुद्धात्म सत्कार ।

पत्र मिला, परम कृपालु गुरुदेवश्रीके मुखारविन्दसे मुझ सम्बन्धी निकले सहज उदुगार आपको अमुक-अमुक स्थानोंके भाईयोंसे ज्ञात हुए-सो आप सबने स्वाभाविक प्रसन्नता और उत्साहपूर्वक मुझे लिखे सो जानें।

मुक्तिनाथकी इस दास प्रत्ये सहज कृपादृष्टि इस बातका द्योतक है कि अति उमंगभरी मुक्तिसुन्दरी अप्रतिहतभावे, मुझ कृतकृत्यके साथ, महा आनन्दमयी अस्खलित, परमगाढ आलिंगनयुक्त रह कर शीघ्रातीशीघ्र कृतकृत्य होना चाहती है।

परम पिताश्रीने हम सब पुत्र मण्डलको अटूट लक्ष्मी भण्डार (दृष्टिरूपी चावी द्वारा खोलकर) भोग देतू प्रदान किया है, इसे नित्य भोगो यह ही भावना है।

तिर्थंकर योग सूचित करता है कि सर्व सज्जन पुत्रगण इस भोगको निस्सन्देह भोगते हुए नित्य अमर रहेंगे।

"स्थानो न क्षायिक भावना, क्षायोपशमिक तणा नहीं,
स्थानो न उपशम भावना, उदय भाव तणा नहीं."

"गुण अनन्तके रस सबै, अनुभव रस के माहिं,
यातें अनुभव सारीखो और दुसरो नाहिं."

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृथक्-पृथक् पत्रोंको पहुंच सम्भव नहीं, अतः सहज मिलने पर आप उस भाईयोंको मेरा यथायोग्य स्नेह बोल देवें.......सर्व भाइयोंके नित्य आनन्दका निरीच्छकपणे इच्छुक।

मात्र मोक्ष अभिलाषी

निहालचन्द्र सोगानी

नित्य शुद्ध सुख सागरका रस प्रति-वृत्ति द्वारा आस्वादन करते रहना ही हर आत्माके लिये परम कार्य है। अन्य सर्व अकार्य हैं। जैसे भी होवे परसन्मुख रस, शिथिल (क्षय) करो! स्वसन्मुख आनन्दमें निरन्तर लीनता यह स्थिति पूर्णपणे प्रगट कर देगी। निकट आत्मार्थीको इस हेतू बिना अन्य लक्ष्य किंचित भी नहीं होता। वरना संसार प्रति के दुःखोंसे किंचित भी हटना नहीं हो सकता।

❀

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्धि-पत्र

द्वितिय विभाग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६	१४	पमात्म	परमात्म
७	५	सर्वज्ञदव	सर्वज्ञदेव
७	८	ध्रुव	ध्रुव,
८	१३	षरमात्मा	परमात्मा
८	२१	वस्तु, है द्रव्य	वस्तु है द्रव्य
८	२४	लक्षम	लक्षमें
१०	१६	जय	नय
१५	८	परिणामीक	पारिणामीक
१९	२४	आत्म	आत्मा
२१	२१	कसी	कैसी

तृतिय विभाग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
६	१२	अभूतार्य	अभूतार्थ
८	२	स्वभाव	स्वभाव
८	३	होता ही है।	होता ही।
१५	१	उसस	उससे
१९	३	हो जानेस	हो जानेसे
,,	११	प्रदेशेमें	प्रदेशमें
,,	१७	कर	करे
२४	१०	परसत्ता	परसत्ता
२५	१७	एसका	इसका
२७	२	जरु	जरूर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३७	१८	उसक्री	उसकी
३८	७	आर	और
४५	१५	दाय	सदा
४९	४	दव	देव
५०	१२	उउ	उड
,,	१८	सहब	सहज
६४	१	टहकर	हटकर
६५	१०	आर	ओर
७०	११	बंधी	बंधी
,,	१७	झुजता	झुकता
८०	२	भक्ति	भक्तिका
९६	१५	हाजाती	होजाती
९८	१४	ध्रुव:	ध्रुव
१००	१६	रहता)है	रहता है)
११२	१६	प्रत्यक	प्रत्येक
११४	१७	होता ह	होता है
,,	११	रहे छ ?	रहे छे ?
११७	३	हीता है	होता है
११७	१०	स्वयम	स्वयं
११८	११	स्वरुपम	स्वरुपमें
१२०	५	कृत कृत्व	कृत कृत्य
१२२	१७	दीनों	दिनों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२)

द्वितीय विभाग।

पू. गुरुदेवश्री का परमात्म प्रकाश

गाथा–४३–६५ और ६८ पर के प्रवचन और आत्मधर्म (गुजराती) अंक १०–११ में से ' दृष्टि का विषय ' का अनुवाद।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ श्री परमात्म प्रकाश गाथा ४३ ॥

(आसो वद १० बुधवार दिनांक २०-१०-६५)

यद्यपि पर्यायार्थिक नय से, भगवान आत्मा, कारण शुद्ध ध्रुव प्रभु को–अवस्था का उत्पाद व्यय होना, अर्थात् पूर्व अवस्था का अभाव सो व्यय और नई अवस्था का होना सो उत्पाद है, तो भी पर्याय का परिणमन द्रव्य में नहिं है। पर से तो भिन्न ही है, लेकीन पर्याय भी वस्तु में नहिं है। वस्तु में कर्म नहिं है, शरीर नहिं है, पून्य पाप का भाव नहिं है,—उत्पाद व्ययरुप पर्याय वस्तु में नहिं है।

सूवर्ण के जेवर में, सुवर्ण में से कडा की अवस्था हुई पीछे कुंडलादि हुआ ईस में सुवर्ण उत्पाद व्यय से रहित है, ऐसे आत्म द्रव्य में परिणमन नहिं है, सो कहते है।

आत्मा एकीला ध्रुव पिंड पडा है, उस में राग, विकल्प, उत्पाद व्यय नहिं है। इसलिये राग, विकल्प, पर्याय पर का लक्ष छोड दे। वस्तु उत्पाद व्यय का परिणमन बिना की है। पर्यायार्थिक नय से उत्पाद व्यय सहित है, तो भी द्रव्यार्थिक नय से उत्पाद व्यय रहित है। वस्तु अनादि अनंत है, है और है। उसमें अवस्था का होना और नाश होना, सो अंतर में नहिं है। ध्रुव में नहिं है। यह किस का घर की बात है? यह द्रव्य है, चिदूघन है। आत्मा एकीला चिदूघन है। ध्रुव है, ध्रुव है, प्रत्यक्ष है, नित्य है, एकरुप है, जीस को भाव-अभाव नहिं है। भाव अर्थात् पर्याय का उत्पन्न होना, और अभाव अर्थात् पर्याय का अभाव होना, सो वस्तु के भीतर में नहिं है।

देखो, वस्तु का स्वभाव की अचिंत्यता, अपरिमितता बेहदता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव का सामर्थ्य पूर्ण ध्रुव है। ध्रुव वस्तु में पर्याय का उत्पाद व्ययरुप परिणमन नहिं है। द्रव्य सदा ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव, वस्तु... वस्तु...वस्तु सदा नित्य...नित्य...नित्य है। ऐसा अंतर ध्रुव भगवान आत्मा में, वितरागी शांति द्वारा, निर्विकल्प शांति द्वारा; उसका बल द्वारा—देखो, राग का बल द्वारा नहिं, निमित्त का बल द्वारा नहिं, शरीर का बल द्वारा नहिं, शरीर का संघयण का बल था इसलीये हुआ ऐसा भी नहिं। सो परमात्मा को, निज स्वरुप-ध्रुव...ध्रुब... चिद्घन को—निर्विकल्प शांति द्वारा, अंदर में वितरागी शांत समाधि द्वारा, उसके बल से श्री तिर्थंकरदेवने, ऐसा ध्रुव स्वरुप को देह में रहा हुआ—सो निमित्त से कहा—इसमें यह भगवान ऐसा है—ऐसा अंतर में देख लीया है।

भाव भावहिं संजुवउ भावभावहिं जो जि।
देहि जि दिट्ठउ जिणवरहिँ परमप्पउ सो जि ।।४३।।

अहा...हा...हा...हा...! यह परमात्म प्रकाश है न? आत्मा देह में रहा है, सो असद्भूत उपचरित व्यवहार। असद्भूत पर्याय सो व्यवहार। द्रव्यार्थिक नय सो निश्चय। इस में पर्याय है सो व्यवहार। व्यवहार है ही नहिं—ऐसा कौन कहते है? ऐसे रागादि है ही नहिं, ऐसा किसने कहा? यह व्यंवहार और राग के सहारे निश्चय है, ऐसा नहिं, है। पर्याय-व्यवहार-के सहारे द्रव्य है, ऐसा नहिं।

आ...हा...हा...! यह अनादि अनंत पदार्थ है कि नहिं? अंदर में पून्य और पाप, आये और गये। भगवान आत्मा अनादि अनंत ध्रुव पदार्थ है कि नहिं? यह आत्मा की वर्तमान दशा में, हालत में, उत्पाद व्यय का होना सो व्यवहार है। इसलिये एक न्याय से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसको अभूतार्थ कहा है। तो भी आश्रय लेनेवाली पर्याय है। ओर पर्याय है सो व्यवहार है। और व्यवहार से निश्चय प्राप्त होता है-ऐसा नहिं है।

प्रश्नः—निश्चय का आश्रय तो व्यवहारने (पर्यायने) कीया ने ?

उत्तरः—पर्यायने आश्रय कीया, तो किस का...कीया ? द्रव्य का किया। पर्यायने विषय कीया है अर्थात् भूतार्थ द्रव्य इसका विषय है। पर्याय का आश्रय से भूतार्थ विषय नहिं होता है। यह सूक्ष्म बात है।

एकदम आत्मा ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव, अपरिणामी,-निहालभाई कलकत्तावाळे कहते थे-ऐसा है। लोगों को मानने में नहिं आता था, लोगों को खबर नहिं। निहालभाई अजमेर के (रईश) थे। वस्तु एकील ध्रुव है, अपरिणामी है। द्रव्य, वस्तु अपरिणामी है, पर्याय परिणमती है; द्रव्य वस्तु को परिणमन कैसा ?

यद्यपि उत्पाद और व्ययकर सहित है अर्थात् 'परिणतः' शब्द संस्कृत में पडा है। भाई! यह तो बादशाह का घर है ?! साधारण बादशाह के यहां भी ठीक हो कर जाने का होता है, तो फीर यह तो परमात्मा खुद, तिनलोक का नाथ आत्मा खुद है। एकीला ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव है। पर्याय भले ही परिणमन में हो। लेकीन ध्रुव में पर्याय नहिं है।

यह परमात्म प्रकाश है। एक समय की पर्याय परमात्मा नहिं, यहां तो द्रव्य परमात्मा है। यह भाव-अभाव से रहित है। उत्पाद व्यय सहित है, तो भी द्रव्यार्थिक नय से उत्पाद व्यय रहित है। यह आत्मा ध्रुव...ध्रुव एकरुप चिदानंद है। परिणमन रहित है। एकीला विर्य का पिंड प्रभु है। आत्मा एकीला चैतन्य दलरुप है। पुर है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिस में से अनंत कैवल्यज्ञान चला आवे। आत्मा अर्थात् एकीला आनंद जो ध्रुव परिणमन रहित है।

द्रव्यार्थिक नय अर्थात् जिस का प्रयोजन एकीला ध्रुव को जानने का है। जो ज्ञान का पर्याय ध्रुव को जानना चाहता है, यह ध्रुव में परिणमन नहिं है। यह आत्मा अनंतगुण का पिंड पडा है। निर्मल पर्याय, क्षायिक सम्यक्त्व की पर्याय, यथाख्यातचारित्र की पर्याय भी वस्तु में कहां है? संसार पर्याय का व्यय और कैवल्य का उत्पाद, दोनों ध्रुव में नहिं है। यह अनादि अनंत भगवान अंतर ध्रुव वस्तु को जिनवरने देह में रहने पर भी जान लीया है। ध्रुव को देख लीया है। पुरा द्रव्य को एक समय में देख लीया है। ऐसा कहते है।

यह द्रव्य की दृष्टि हुई कि द्रव्य सिद्ध अवस्थारुप, केवलज्ञान रुप परिणमता है। सिद्ध स्वरुप का पिंड ही आत्मा है। पर्याय में सिद्ध होता है, अर्थात् वस्तुता से सिद्ध स्वरुप ही आत्मा है। द्रव्य तो ध्रुव...ध्रुव अनादि अनंत सिद्ध है। पमात्म स्वरुप है। उस में अनंत परमात्मा बिराजते है। वस्तु पुरा वितराग पिंड है। उसको भगवान परमात्मा अरिहंत तिर्थंकरदेवने देख लीया कि यह द्रव्य, यह वस्तु उत्पाद व्यय रहित है। जाननेवाली भले ही पर्याय, लेकीन जानी हुइ वस्तु ध्रुव। उसको वितराग निर्विकल्प आनंदरुप समाधि द्वारा तद्भव मोक्ष के साधक ऐसे जिनवरदेवने देह में भी जान लीया है। ऐसा नहिं कि मोक्ष होगा तभी जानेंगे। यहां ने यहां जान लीया है कि यह ध्रुव है। ऐसा जान लीया है।

भाई! जिस में परिणाम नहिं है। आ...हा...हा...हा...गजब बात है। द्रव्य परमात्मा, ऐसा कि ऐसा त्रिकाल पिंड है, एसा वितराग समाधि के बल से अनुभव कर—ऐसा शिष्य को भी कहते है कि अनुभव कर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

॥ श्री परमात्मप्रकाश गाथा ६५ पर पू. गुरुदेवका प्रवचन ॥

(सं. २०२२, कारतक वद १ दि० १०-११-६५)

बंधु वि मोक्खु वि सयलु जिय जीवहं कम्मु जणेइ ।
अप्पा किंपि कि कुणइ णवि णि-छउ एउं भणेइ ॥६५॥

भगवान तिर्थंकरदेव, सर्वज्ञदव परमात्मा ऐसा कहते हैं;-यह वस्तु है जो आत्मा, सो आत्मा, सो ध्रुव चैतन्य आनंदकंद ज्ञायक-मूर्ति अनंतगुण का ध्रुव स्वभाव आत्मा है। आत्मा वस्तु जो है, सो ध्रुव बिना आदि अंत का अकृत्रिम सामान्य ध्रुव तत्व है। आत्मा क्या है, उसकी जीवने अनंतकालमें द्रष्ठि नहिं की।

भगवान सर्वज्ञ परमात्मा तिर्थंकर देव, जिसने एक समयमें-सूक्ष्मकालमें-तीनकाल तीतलोक प्रत्यक्ष देखा और जाना ऐसा अरिहंत भगवान, जिसने एक समयमें, केवलज्ञान, केवलदर्शन की दशा द्वारा तीनकाल तीनलोक देखा, जाना, ओ भगवानकी वाणीम ऐसा आया, कि भैया! निश्चयसे अर्थात् सत्य द्रष्टि से देखा जाय तो वस्तु भगवान आत्मा, सत् शाश्वत ध्रुव पदार्थ है-जिसमें बेहद ज्ञान दर्शन, आनंद ऐसी शक्तियां का सत्वरुप आत्म तत्व है। सो वस्तु-तत्व परको ग्रहे या छोड सो वस्तुमें नहिं।

वस्तु खुद शाश्वत आनंद, अनादि अनंत, ध्रुव चैतन्यकी मूर्ति, अनंतगुण का सामान्य ध्रुव एकरूप, ऐसा निश्चय आत्मा, ऐसा सत् भगवान, परको ग्रहे या छोडे, सो वस्तुका स्वरूपमें नहिं है। भगवान क्या कहते है, सो जीवने कभी वास्तविक तत्वको सुनाही नहिं। अनंतकालसे परमात्मा तिर्थंकर जिनवर देवने ऐसा कहा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह वस्तु जो है खुद पदार्थ; स्वयं अनंत आनंदरुप है। नव तत्वमें आत्मा है सो ध्रुव ज्ञायक आनंदकंद सत् चिदानंद शुद्ध स्वरुप जैसा पर्यायमें भगवानका है-ऐसा यह आत्म वस्तुका स्वरुप है। सो वस्तु खुद परको बंधन करे या छाडे सो वस्तुका स्वरुप में नहिं। सो वस्तु अखंड आनंद ज्ञायकमूर्ति, सत्‌चिद् अनादि अनंत अकृत्रिम सत्व, आत्म वस्तु खुद एक समयकी अवस्थामें नहिं आती। पर्याय जो है-उस अवस्थामें-हालतमें, वस्तुकी अंतर सन्मूखकी द्रिष्टि बिना पर सन्मूख की द्रिष्टि से, एक अंश के लक्षसे उत्पन्न हुआ मिथ्यात्वभाव और रागद्वेष भाव-उसको कर्म कहनेमें आता है। ये भाव कर्म है और उसके निमित्तसे बंधा हुआ रजकण जड ज्ञानावरणादि आठ कर्म-ये जड कर्म है। ये भाव कर्म है और वे जड कर्म है। वस्तु खुद परमस्वरुप परमात्मा स्वयं है-यह परमात्म प्रकाश है। यह बात अब की है। भैया! यदि तू परमात्मा पूर्ण न हो तो पर्याय में परमात्मा कहांसे होगा! छोटी पीपर के प्रत्येक दानामें पूर्ण चरपराई भरी न हो तो घसनेपर बहार आवेगी कहांसे? क्या चरपराई बहारसे आती है? भीतरमें शक्तिरुप पडी है सो प्रगट होती है। ऐसे भगवान आत्मा, अरिहंत और सिद्ध की अवस्थारुप, पर्यायरुप, केवलज्ञान, केवलदर्शन, पूर्ण आनंदरुप परमात्मा पर्यायमें होता है, सो पर्याय कहांसे होती है? क्या बहारसे आती है? आप खुद परमात्मा अनंतगुणकी खानी-निधान वस्तु, है द्रव्य, ऐसा जो आत्मा, उसकी अंतर दृष्टि नहिं करके, अनादिसे बाह्यदृष्टि द्वारा, पूर्ण पदार्थ क्या है-वैसा दृष्टिमें न लेने पर, वर्तमान अंशको, रागको, विकल्पको-इन्द्रियको, लक्षम लेकर वर्तमान पर्यायमें विकार उत्पन्न करता है। सो कर्मके लीये हुए चतुर गतिमें भ्रमण करता है-बंधको प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है–कर्मके अभावसे मुक्त होता है। ऐसे कर्मका सद्‌भावसे बंधन और कर्मका अभावसे मुक्ति–वस्तु आत्मा तो त्रिकाल निर्विकल्प स्वरूप है। यह सूक्ष्म बात है। आत्म तत्व अर्थात् भगवान सर्वज्ञ तिर्थंकर देखने कहा ऐसा आत्मा, एक सेकंड भी अनंतकालमें दृष्टिमें लीया नहिं। और सब विपरित कर कर परेशान हुआ। भगवान सर्वज्ञ ऐसा कहते है।

भगवान सर्वज्ञ समवसरणमें बिराजते हैं तब इंद्रादिकी उपस्थिति–चक्रवर्ति, बलदेव, वासुदेव, आदि को ऐसा कहते हैं। महाविदेह क्षेत्रमें वर्तमानमें भगवान सिमंधर परमात्मा मनुष्य-देह सहित विराजते हैं–सो भगवान ऐसा फरमाते हैं। भो आत्मा! चार गतिका वंधन, और यह बंधन का अभाव, ये दोनों वस्तुके स्वरूपमें नहिं है। वर्तमान पर्याय नयी उत्पन्न होती है और व्यय होती है।

भावार्थः—अनादिकालसे कर्म और आत्मा का संबंध है। कर्म रजकण वस्तु है–सूक्ष्म धूली जड है, आत्मा अरुपी चैतन्य आनंद कंद है। उसकी समीपमें (एक क्षेत्रावगाह) आठ कर्म ज्ञानावरणादि सूक्ष्म धूलीरूप है। उसका संबंध अयथार्थ स्वरूप अर्थात् झुठी नयसे–अनुपरचरित असद्‌भूत व्यवहार नयसे है।

ये अंतरकी बातें जीवने सुनी नहिं। अनंतबार नवमी ग्रैवक गया। लेकीन वास्तविक तत्व चैतन्य भगवान का सम्यक् ज्ञान जीवने एक सेकंडमात्र भी कीया नहिं–ऐसा सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं। बिना आत्मज्ञान सब कीया। क्रियाकांड, दया, दान, व्रत, भक्ति, तप आदि बहुत शुभभाव हुआ, स्वर्गमें भी गया, लेकीन उससे जन्म मरण का अंत आया नहिं। धूली का देव हुआ,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

धूली का राजा हुआ, धूली का (पैसावाला) शेठ हुआ, लेकीन भगवान आत्मा की श्रद्धा व ज्ञान जीवने अनंतकालमें कीया नहिं। ऐसा जो भगवान आत्मा, उसको अनादिसे अयथार्थस्वरुप अर्थात् झुठी, अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहार नयसे आठ कर्म का संबंध है। ईस प्रकारकी बात ही अबी तो चलती नहिं। धर्म के नाम पर हा हो- और धमाल होती है। कीतने लोग तो व्यापार-धंधेमेंसे निवृत्ति नहिं पाते है और कीतने धर्म के नामपर बाह्य क्रियाकांडमें संतुष्ट है। वस्तु क्या है? आत्माका स्वरुप क्या है? उसको कैसा कैसा संबंध है। कौन संबंधसे परिभ्रमण है? कुछ पता नहिं।

यहां तो कहते हैं की भगवान आत्मा का अंतर स्वरुप बेहद ज्ञान और आनंद का कंद है। उसको अनादिसे जड कर्म का संबंध झुठी नयसे है। वास्तविक संबंध नहिं होने से झुठी नय से संबंध कहा। समीप है इसलीये संबंध, निमित्त है इसलीये व्यवहार कहा। जडकर्मका बंध, अनुपचरित, असद्‌भूत व्यवहार नय से अर्थात् झुठी नयसे है-ऐसा कहने में आता है। यह चैतन्य और वे जड-दोनों का संबंध झुठी जय से है-तो कुटुंम्ब परिवार का आत्मा से संबंध है ही नहिं।

दुसरी बात—भगवान वस्तु-परमात्म स्वरुप स्वयं, द्रव्यस्वरुप, अखंड ज्ञायक भाव तत्व-उसको पून्य पाप-दया दान व्रत, काम भोगादि के भाव है, सो अशुद्ध निश्चयनयसे है। अर्थात् वर्तमान अंशमें है। रजकण दूर है-उसकी जाति में और अंश में नहिं है। वस्तु जो ध्रुव त्रिकाल है उसमें तो कर्म नहिं है, लेकीन एक समय की अवस्था में भी कर्म नहिं है। वस्तु जो है-अखंड आनंद ज्ञायकमूर्ति, चिदानंद परमात्मा पोते, ऐसा जो भगवान आत्माको वर्तमान अवस्था में संबंध है। कर्म तो दशामें नहिं थे ईसलीये झुठी नय से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संबंध कहा था। यहां तो वर्तमान दशामें संबंध है-ईसलीये दशामें निश्चय है लेकीन अशुद्ध है। पून्य-पाप काम, क्रोध, दया, दानादि विकल्प जो उठते हैं सो विकार हैं-राग है, सो एक अंशमें है-ईसलीये निश्चय कहा और अशुद्ध होनेसे अशुद्ध निश्चयसे संबंध है ऐसा कहा। यह तो परमात्म प्रकाश है। बहुत अलौकीक गाथा है।

रागादि भाव कर्म अर्थात् पून्य और पाप का जो विकल्प उठते है अर्थात् शुभ, अशुभ भाव उठते हैं, सो मलीन होने से भाव कर्म कहने में आता है। सो उस पर्याय का भाव है-द्रव्य का नहिं। द्रव्य पर्याय बिना का है। द्रव्य में पर्याय कहां है ? ध्रुव वस्तु है-उस में पर्याय कहां थी ? द्रव्य तो द्रव्य ही है।

भगवान आत्मा अनादि अनंत अकृत्रिम वस्तु सत् है, अनंतकाल का एक ही सत्व है। सो वस्तु बेहद ज्ञान, दर्शन आनंद से भरा हुआ सत्व का तत्व ऐसा जो द्रव्य, उसकी वर्तमान एक समय की अवस्था में पर का संबंध कहना, सो ध्रुव के लीये असद्भूत अर्थात् झुठी नय से है। और ऐसा अखंड पूर्ण द्रव्य होने पर भी, उसका एक अंश में, पून्य, पाप और रागद्वेष, और यह पून्य और पून्य के फल ठीक है-ऐसा जो मिथ्यादृष्टि का मिथ्यातभाव, जो पर्याय के एक अंश में है-अंश में है इसलीये निश्चय कहा और मलीन होने से अशुद्ध कहा। भगवान आत्मा, एक सेकंड के असंख्य भाग में पूरण ध्रुव आनंदकंद द्रव्य वस्तु है। उसका राग और विकल्प में प्रेम करके अनादर कीया। हे जीव ! उस में तेरा जीवन का घात होता है।

परम आनंदमूर्ति भगवान वस्तु, जिस की खानी में अनंत परमात्मा पडा है। सिद्ध की समय समय की अनंत अवस्था

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती है, ऐसा अनंत परमात्मा आत्मद्रव्य में पडा है। ऐसा जो आत्मद्रव्य वस्तु-उस वस्तु का वर्तमान पर्याय--अंश-में आदर छोडकर एक समय का अंश का आदर कीया, ईसलीये मिथ्यात्व-भाव हुआ, और इसलीये जो राग द्वेष हुआ, सो अशुद्ध निश्चय से हुआ हैं। शुद्ध निश्चय स्वभाव में वे नहिं है।

भगवान! तेरी बात भगवान कहते हैं। भगवान सर्वज्ञ प्रभु समवसरण धर्मसभा में कहते थे। दिव्य ध्वनि में ऐसा आया कि प्रभु! तू पूर्ण स्वरुप वस्तु है। ईसका तूने आदर नहिं कीया। और एक समय की पर्याय को लक्ष में लकर, मिथ्याभ्रम और रागद्वेष उत्पन्न कीये है सो एक समय की पर्याय में-तेरी पर्याय का अस्तित्व में-उत्पन्न हुआ विकार है। यह विकार और तरा संबंध अशुद्ध निश्चय से है। भाई तू कौन है? और तेरी भूल कितनी? कीतना समय की? ईसका विचार तूने कभी कीया नहिं।

यहां कहते है कि भगवान, वास्तव में तेरा स्वरुप, अशुद्ध निश्चय से उत्पन्न हुआ विकार और कर्म का संबंध बिना का, त्रिकाली पूण वस्तुरुप है। एक समय म भगवान पूर्णानंद वस्तु है। और अशुद्धता है सो आत्मा की अवस्था में है। उसको त्रिकाली की साथ अशुद्ध निश्चय से संबंध कहने में आता है।

संयोग सब कहां रहा? उसकी साथ संबंध कैसा? स्त्री, दुकान, जेवर, मकान, आदि साथ का संबंध असद्भूत-झुठी-नय से व्यवहार से, निमित्तरूप होने से, उपचार से हैं-दुर है ईसलीये कर्म के रजकण नजदीक है-एक क्षेत्रावगाह है, ईसलीये उसको अनुपचार कहा, फीरभी असद्भूत है-क्यों की जीव की पर्यायमें नहिं है-भिन्न है। वे एक क्षेत्र में भिन्न है-संयोगो भिन्न क्षेत्र में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भिन्न है। ईसलीये असद्भूतनय स उपपचार है। वास्तव में इसके साथ संबंध नहिं है। शरीर को आत्मा थोडा रख सकता है? शरीर की अवस्था राग और विकल्प के आधिन त्रिकाल में नहिं है। ऐसा भगवान कहते हैं। अजीव तत्व की अवस्था को जीव यदि करे तो अजीव की स्वतंत्रता नहिं रहती। भगवान कारण तत्व में यह धूली नहीं है। यह भिन्न तत्व है। एक समय की अवस्था में मलीन पून्य-पाप के भाव सो अशुद्ध अंश है। वह अंश से बंधा हुआ कर्म से बंध और कर्म छूटने से मुक्ति होती है। पर्याय में बंध-मुक्ति है, वस्तु में बंध-मुक्ति नहिं। वितराग सर्वज्ञ कथित तत्व संतोने आसान कर दीया है।

जड़ कर्म से मुक्ति भी असद्भूत् व्यवहार से है। यह असद्भूत संबंध था। और पून्यपाप के भाव का संबंध भी असद्भूत निश्चय से था। ये दोनों छूट गया। यह सूक्ष्म बात है। वितराग कथित तत्व बहूत गूढ है।

भगवान आत्मा वस्तु, अनादि अनंत ध्रुव तत्व, उसकी पर्याय में ऐसा दो प्रकार कहा। अवस्था में मलीनभाव, सो अशुद्ध निश्चय से संबंध कहा और रजकण का संबंध एकक्षेत्रावगाह होने से असद्भूत अनुपचार कहा। दो नय से बंध और मुक्ति को कहा कि असद्भूत से बंध और असद्भूत से मुक्ति। यद्यपि मुक्ति आत्मा का आश्रय-पूर्वक है, तो भी व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय शुद्ध परमात्मा को बंध का होना और बंध का अभाव सो द्रव्य में—वस्तु में—नहिं, इसको यहां शुद्ध कहते हैं। एक समय की अवस्था में बंध और बंध का अभाव है। सो बंध का अभाव की अपेक्षा भी अशुद्ध निश्चय से लागु होती है। अशुद्ध निश्चय और व्यवहार एकार्थ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका अंश है ईस लीये व्यवहार से बंध और व्यवहार से मुक्ति है। निश्चय स्वरुप भगवान द्रव्य स्वरुप में बंध और मुक्ति, वस्तु में नहिं है। भाई! वस्तु जो है सो त्रिकाली तत्व है, उस में बंध होवे तो वस्तुका अभाव हो जाय और इसकी मुक्ति का अर्थ क्या? वस्तु में बंध और मुक्ति है नहिं। यहां तो उपचार से कह कर व्यवहार में, बंध और मुक्ति दोनों को डाला है।

भाई! तेरा पदार्थ भगवान जीतना बडा पदार्थ है। भगवान का आत्मा और यह आत्मा में वस्तुता से कुछ फरक नहिं। इन्होनें अवस्था में—पर्याय में फर्क कीया। पर्याय अर्थात् व्यवहार से फर्क हुआ। वस्तु में फर्क नहिं है। भगवान आत्मा चैतन्य सूर्य है। चैतन्य का पिंड प्रभु आत्मा है। एकीला चैतन्य का प्रकाश का पिंड प्रभु आत्मा है। इसका अभान होने से एक समय की अवस्था में उत्पन्न कीया हुआ विकार-विकल्प-मिथ्यात्वभाव, परलक्षीभाव, जीस का निमित्त से जड़कर्म बंधा,-ये दोनों अशुद्ध व्यवहार नय से है, शुद्ध निश्चय से वस्तु का स्वरुप में वस्तु है सो है।

वास्तव में तो भगवान आत्मा, वस्तु है, उसका आश्रय कर के पर्याय हुई, सो भी भेदरुप हुई न? यह व्यवहार हुआ। मोक्षमार्ग भी व्यवहार हुआ। यहां निश्चय व्यवहार की (जो मोक्षमार्ग की पर्याय होता है ईस की) बात नहीं है। यहां तो द्रव्य पर्याय की बात है। भगवान आत्मा, वस्तु...वस्तु...वस्तु...अनादि अनंत ध्रुव अनंत गुण का पिंड, उसका सम्यग्दर्शन में आश्रय कीया, और जो (निर्मल) पर्याय प्रगट हुई, सो पर्याय व्यवहार नय का विषय है। पर्याय है सो व्यवहार नय का विषय है। अंतर में पूर्ण एकाग्र होने पर केवलज्ञान प्रगट हुआ, सिद्ध हुआ,-ये सब व्यवहार नय का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय है। व्यवहार अर्थात् त्रिकाली द्रव्य का एक अंश है। शुद्ध दशा भी एक अंश है। त्रिकाली स्वरुप नहिं। संसार भी पर्याय है और मोक्ष भी निर्विकारी पूर्ण दशा है। वस्तु तो अनादि अनंत ध्रुव है।

वस्तु जो शुद्ध पारिणामिक स्वभाव है, जो कभी परिणमती नहिं है, उत्पाद–व्यय में नहीं आती है। आत्मा में नई अवस्था उत्पन्न होती है, पुराणी अवस्था का नाश होता है-सो पर्याय का कार्य है। वस्तु ध्रुव है सो जैसी की तैसी है। अविनश्वर शक्तिमान स्व तत्व है, सो शुद्ध परिणामीक है अर्थात् परम सत्य स्वरुप–एकरुप परमभाव है, विकार–पर्याय एक समय का भाव अपरमभाव है। उसको, वस्तु जो त्रिकाली है, सो शुद्ध परमभाव के ग्रहण करनेवाला निश्चय नय से नहिं करता है। भगवान शुद्ध पारिणामीक वस्तु स्वयं न तो बंध को करता है न बंध का अभाव को करता है। केवलज्ञान भी एक समय की दशा है, केवलज्ञान भी त्रिकाली वस्तु नहिं। त्रिकाली को जानने पर भी केवलज्ञान एक समय की दशा है। सिद्ध भी एक समय की दशा है।

उत्पाद, व्यय, ध्रुव स्वरुप वस्तु क्या है? अवस्था में क्या है? पर में क्या है? इसको दुसरा कौन कौन के साथ कैसा संबंध है? ये सब जाने विना हे जीव! तू क्या करेगा? हरितकाय आदि का त्याग करता है, लेकीन त्याग क्या हैं? ईसकी खबर नहिं, तो त्याग कहां से कीया? ऐसा जीव को आत्मा का खुद का त्याग दृष्टि में होता है।

एक समय की हालत है, जो दशा–सो दशा संसार की हो या संसार का अभाव की हो, वस्तु स्वरुप परम पारिणामीक सत्... सत्...सत्...अनादि अनंत ऐसा आत्मा, एक नय से विकार को करता भी नहिं–विकार को टालता भी नहिं। बंध और मोक्ष से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहित भगवान वस्तु स्वरुप है। ध्रुव...ध्रुव...अखंडानंद द्रव्य में, वर्तमान पर्याय का बंध और बंध का अभाव वस्तु में नहिं है। ऐसा भगवानने कहा है। त्रिलोकनाथ तिर्थंकरदेव सो इंद्रो की उपस्थिति में भगवान ऐसा फरमाते थे।

परमात्मा सीमंधर प्रभु महाविदेह क्षेत्र में बिराजते है—ऐसे बीस तिर्थंकर वर्तमान में बिराजते है। कीतने लाख केवली बिराजते हैं, यह बात सिद्ध हो चुकी है। यह भगवान फरमाते है—त्रयकाल के भगवंत यही फरमाते है। वस्तु जो द्रव्य एकरुप, परम स्वरुप, त्रिकाल आनंद कंद, ज्ञायक द्रव्य, ऐसा शुद्धात्मा आराधने योग्य है। आराधनेवाली तो पर्याय है। वस्तु अंतर अनंतगुण का पिंड एकरुप ध्रुव वस्तु, जीस में बंध मोक्ष की पर्याय नहीं है, ऐसा आत्मा भीतर में श्रद्धान के योग्य है, अर्थात् उसकी दृष्टि और अनुभव करने योग्य है। ऐसा अखंडानंद द्रव्य, चैतन्यमूर्ति, पर अंतर में टगटगी लगा कर एकाग्रता करनी योग्य है। ऐसी एकाग्रता का नाम धर्म है, अर्थात् मोक्षमार्ग है।

भाई ! सून तो सही तेरी रिद्धि ! ! तू कैसा है ? और कीतना है ? सूने बिना कैसे समजाय। ओर बिना समजे धर्म कहां से हो ? (बाजार में) माल लेने को जाता है तो भी यही चीज लेना है ऐसा निश्चय करता है—वरना काम कैसे होय ? ऐसे यह आत्मा कैसा है ? ईसको देखना है ? ग्रहना है ? समजना है ? वरना धर्म कहां से होगा ? धर्म करना है, लेकिन होगा कैसे ? ईसकी खबर नहिं है। यहां तो कहते हैं कि धर्म सीधा आत्मा में से होता है। शुद्ध वस्तु अखंडानंद प्रभु आत्मा, इसकी अंतर श्रद्धा, ज्ञान और अनुभव करने पर धर्म आत्मा में से आता है, दूसरी ओर से धर्म आ सके-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसा नहिं है।

शुद्ध आत्मा, प्रभु-जीस को एक समय की पर्याय, राग की अवस्था, बंध और बंध का अभाव की, नहिं है, ऐसा जो ध्रुव वस्तु परमात्मा चैतन्यतारा, उसको पहचान कर-दृष्टि ज्ञान कर के ठरने योग्य है, ईस के बिना, वितराग सर्वज्ञ परमात्मा के पंथ में दूसरा कुछ मार्ग नहिं है। लोग दूसरा मानते है, कल्पना करते है। (जैन) संप्रदायवाले को पता नहिं है तो दूसरे को तो पता कहां से हो?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री परमात्म प्रकाश गा. ६८ पर पू. गुरुदेवश्री का प्रवचन

कार्तिक वदी ५, दिनांक २३-१२-६५ शनिवार

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ ।
जिउ परमत्थें जोइया जिणवरु एउँ भणेइ ॥ ६८ ॥

यद्यपि यह आत्मा, वस्तु जो द्रव्य, शुद्ध परमपारिणामीकभाव-रुप वस्तु है, सो वस्तु न बंध की कर्ता है, न मोक्षमार्ग की कर्ता है, न मोक्ष की कर्ता है—यह सूक्ष्म बात है। वस्तु जो द्रव्य ध्रुव वस्तु है, सो संसार का भाव को नहिं करती है,मोक्षमार्ग को नहिं करती है और मोक्ष को नहीं करती है।

आत्मा अखंडानंद ध्रुव तत्व वस्तु, ऐसा आत्मा, जन्म, मरण, बंध, मोक्ष आदि अवस्था को नहिं करता है। वर्तमान पर्याय में, वस्तु शुद्ध द्रव्य है ऐसा, शुद्धात्मानुभूति का अभाव होने पर, शुभ अशुभ उपयोग को करता हुआ, जीवन, मरण, शुभ, अशुभ कर्मबंध को करता है। वस्तु तो पर्याय बिना, ध्रुव है। वस्तु जो है, निश्चयतत्त्व, सो निश्चय का विषय और उसकी जो पर्याय है सो व्यवहार तत्व, व्यवहार का विषय है। ऐसे आत्मा का व्यवहार तत्व और आत्मा का निश्चय तत्व है। सो एकरुप ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव है और व्यवहार तत्व है सो पर्याय है। यह पर्याय में जब तक वस्तु का लक्ष, रुची, स्थिरता, अनुभूति-मोक्षमार्ग का अभाव है तबतक शुभाशुभ भाव को पर्याय करती है। आत्मा करता है उसका अर्थ द्रव्य नहिं, पर्याय करती है। द्रव्य चैतन्य भगवान ज्ञायक स्वरुप जो वस्तु है, सो तो पर्याय बिना का, उत्पाद व्यय बिना का है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्पाद व्यय जो है, सो व्यवहार नय का विषय आत्मा है। निश्चय का विषय त्रिकाल ध्रुव है। निश्चय तत्व जो वस्तु, उसका अनुभव की व्यवहार पर्याय जो है अनुभूति, अर्थात् ज्ञायकमूर्ति का श्रद्धान, ज्ञान, रमणतारुप अनुभव याने मोक्ष का मार्ग, ऐसी जो शुद्ध व्यवहार पर्याय, उसका अभाव में पर्याय में शुभ अशुभ भाव को करता है और शुभ अशुभ भाव के कारण जन्म मरण को करता है। और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर, शुद्धोपयोग से परिणत मोक्ष को कर्ता है। (इसका विवरण) वस्तु तो वस्तु है। सो वस्तु ज्ञायक चैतन्य पदार्थ, उसका अनुभव रुप श्रद्धान ज्ञान और शांति सो अनुभूति,–पर्याय–प्रगट होने पर, जो आत्मा का व्यवहार पर्याय, मोक्षमार्ग का पर्याय, उसको व्यवहार तत्व कहने में आता है। शुद्धोपयोग से परिणत यह भी पर्याय अर्थात् व्यवहार आत्मा है। शुद्ध स्वभाव में एकलक्ष कर के, शुद्धोपयोग रुप पर्यायरुप परिणमकर मोक्ष को कर्ता है सो भी व्यवहार है। मोक्ष पर्याय भी व्यवहार है। द्रव्य जो है निश्चय ध्रुव, उस में बंध, मोक्ष, मोक्षमार्ग, वस्तु में नहिं है। निश्चय नय का सत् वस्तु त्रिकाल एकरुप है।

भाई! ध्रुव तत्व, त्रिकाल एकरुप सदृश तत्व है। उस में बंध मोक्ष नहिं है। मात्र एक समय की पर्याय में, उत्पाद व्यय रुप पर्यायरुप व्यवहार में, शुद्धात्मानुभूति के अभाव से शुभाशुभ परिणमता है और जीवन मरण करता है–और यही द्रव्य स्व की शुद्धात्मानुभूति के काल में, शुद्धोपयोगरुप परिणमन कर के मोक्ष को कर्ता है। मोक्ष की पर्याय को कार्यरुप करता है। सो मोक्ष भी व्यवहार पर्याय है। निश्चय द्रव्य में पर्याय नहिं है। इस प्रकार अवस्था में होने पर भी शुद्ध पारिणामीक परमभाव ग्राहक, शुद्ध नय से आत्म बंध और मोक्ष का कर्ता नहिं है। शुद्ध पारिणामीकभाव, ध्रुव...

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्रुव...ध्रुव एक समय की अवस्था, पर्याय, उत्पाद व्यय बिना का तत्व है। निश्चय आत्मा बंध मोक्ष का कर्ता नहिं। पर्यायरुप व्यवहार आत्मा शुभाशुभ बंध को करे और पर्याय में अनुभूति से मोक्ष को करे। वस्तु सदृश रहनेवाली चीज चैनन्य...चैतन्य...चैतन्य, एकरुप रहनेवाली वस्तु सो निश्चय नय का विषय है। यही निश्चय तत्व है। अवस्था का उत्पन्न होना, और अवस्था का नाश होना, यह व्यवहार नय का विषय है। यह पर्याय तत्व है। यहां परद्रव्य साथ कुछ संबंध नहिं है, ईस प्रकार का व्यवहार की बात नहिं है। निश्चय ध्रुव में पर्याय नहिं है। एकीला ध्रुव है। सदृशभाव, शुद्ध पारिणामीक भाव, त्रिकाल एकरुप, अनंतगुण का एकरुप, उस में बंध नहिं है, मोक्ष नहिं है, और मोक्ष का मार्ग नहिं है। वस्तु तत्व है, उसका दो प्रकार, एक शाश्वत रहनेवाला सदृश है और एक पर्यायरुप होनेवाला विसदृश है। यह सब पर्याय अपरमभाव है। मोक्ष, मोक्ष का मार्ग ये सब अपरमभाव है, क्षायिकभाव भी अपरमभाव है, परमभाव नहिं है। परमभाव त्रिकाली ध्रुव सदृश रहे, सो परमभाव है। यही ध्रुव पर दृष्टि देना, पर्याय की ओर न देखना, तो मुक्ति होगी ऐसा कहने का अभिप्राय है।

ध्रुव का आखा कंद पडा है, ईसके बिना सम्यकत्व नहिं होता, ज्ञान नहिं होता, चारित्र नहिं होता, मुक्ति नहिं होती। कार्य होता है पर्याय से, लेकीन यह कारण, जो महाभगवान, कैसा है? उसकी श्रद्धा, ज्ञान बिना मोक्षमार्ग उत्पन्न नहिं होता। विंसदृश का अर्थ विकार नहिं–उसका अर्थ उत्पाद व्यय रुप होना–ऐसा है।

वितराग सर्वज्ञ देव कथित तत्व को, जीवने जाना नहिं। भगवान आत्मा, सदृश ध्रुव परमपारिणामिक भाव है, इस दृष्टि से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखने में आवे तो बंध और मोक्ष ईस में नहिं है। मोक्ष भी अपरमभाव है। मोक्ष का मार्ग तो अपरमभाव है ही, मगर केवलदर्शन, केवलज्ञान, केवलआनंद, केवलवीर्य ये भी एक समय की पर्याय अपरभाव है। त्रिकालीभाव परमभाव है।

द्रव्य परिणमन विना का, उत्पाद व्यय बिना का है। उसके पर दृष्टि देने की है। ऐसा सून कर शिष्यने प्रश्न किया:—शुद्ध द्रव्यार्थिक नय कर आत्मा मोक्ष का कर्ता नहिं है तो ऐसा समजना चाहीए की शुद्ध नय कर मोक्ष ही नहिं है, और जब मोक्ष ही नहिं, तब मोक्ष के लिये यत्न करना वृथा है?

इसका उत्तर कहते हैः-वस्तु जो सत् चिद् त्रिकाल, वह स्वयं बंध, मोक्ष को नहिं करती है। परिणत हुइ पर्याय में बंध, मोक्ष या मोक्षमार्ग है। शुद्ध निश्चय नयसे वस्तु में बंध मोक्ष नहिं है, तो शुद्ध नय से मोक्ष का पुरुषार्थ भी नहिं है। मोक्ष है, वह बंधपूर्वक है। मोक्ष की पर्याय आत्मा में होती है वह बंधपूर्वक है। बंध का उत्पाद होता है, उस का नाश होकर बाद में मोक्ष होता है। और जो बंध है वह शुद्ध निश्चय नयकर होता ही नहिं। वस्तु स्वरुप से शुद्ध निश्चय नय से बंध हो तो बंध कभी छूटे नहिं। शुद्ध निश्चय अर्थात् शुद्ध सत्व, वस्तु त्रिकाल एकरुप का नय से देखने पर बंध होता ही नहिं। इस कारण बंध के अभावरुप मोक्ष है-यह भी शुद्ध निश्चय नयकर नहिं है। जो शुद्ध निश्चय से बंध होता तो हंमेशा बंधा ही रहता। कसी बात है? ध्रुव रहनेवाली वस्तु को ध्रुव की दृष्टि से देखने में आवे, और बंध ईस में होवे तो बंध भी ध्रुव रहे, ऐसा कहते है। बंध का अभाव कभी न हो सके। वस्तुरुप, नित्यपणे, ध्रुवरुप बंध होवे तो बंध का भी नाश न हो सके।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके बारे में समजनेके लीये दृष्टांत कहते है। कोई एक पुरुष सांकल से बंध रहा है। और कोई एक पुरुष बंध रहित है। उनमें-से जो पहले बंधा था, उस को 'मुक्त' ऐसा कहना ठीक मालूम पडता है। और दूसरा जो बंधा ही नहिं, उसको जो 'आप छूट गये' ऐसा कहा जाय तो यह क्रोध करे कि मैं कब बंधा था! सो यह मुझे छूटा कहता है? बंधा होवे वह छूटे। इसलीये बंधे को तो छूटा कहना ठीक है, और बंधा ही न हो, उसे छूटे कैसे कह सकते है? उसी प्रकार यह जीव शुद्ध निश्चय नयकर बंधा हुआ नहिं है। वस्तु जो है, तत्व है, व है, सदृश है, एकीला सदृश गुण का सत्व है द्रव्य, सो कभी बंधा हुआ नहिं है। द्रव्य को बंधा हुआ कहना और द्रव्य को मुक्त कहना सो ठीक नहिं। बंध मुक्ति, उत्पाद व्यय, पर्याय बिना का द्रव्य, ऐसा भगवान परमात्मा शुद्ध निश्चय नय से भूतार्थ है। निश्चय से यथार्थ है। उसकी दृष्टि करने से, उसका अनुभव करने से, सम्यग्दर्शन होता है। देव गुरु शास्त्र तो बहार रहा, विकल्प भी बहार रहा, ओर निश्चय व्यवहार की पर्याय भी बहार रह गई।

❀ दृष्टि को निमित्त पर रखने से सम्यग्दर्शन होता है? तिन काल में नहिं।

❀ दृष्टि को विकल्प, दया, दान, भक्ति, पूजा के भाव पर रखने से सम्यग्दर्शन होता है? तिन काल में नहिं।

❀ दृष्टि को क्षयोपशम ज्ञान-विर्यादि की पर्याय प्रगट है, उस पर रखने से सम्यग्दर्श होता है? तिन काल में नहिं।

बंध भी व्यवहार नयकर है। आत्मा की विकार में अटकी हुई राग की पर्याय भी व्यवहार से है। मूक्ति भी व्यवहार नय से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। शुद्ध निश्चय नयकर न बंध है, न मोक्ष है। अशुद्ध नयकर बंध है। सो व्यवहार नय हुआ। बंध और मोक्ष की व्यवस्था यह अशुद्ध नय है। अशुद्ध नय कहो या व्यवहार नय कहो, एकही बात है। मोक्ष भी सद्भूत उपचरित व्यवहार नय का विषय है। मोक्ष की पर्याय जो है, यह स्वयं व्यवहार है। स्वभाव आश्रित मोक्ष का मार्ग जो निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र है सो पर्याय व्यवहार है। व्यवहार मोक्ष मार्ग, जो दया दान का विकल्प, सो व्यवहार की बात यहां नहिं है। वे तो बंधमार्ग में गये। कषाय की मंदता का परिणाम, भक्ति, पूजा, दया, दान, देवगुरुशास्त्र प्रति की श्रद्धा का भाव, सो रागतो बंध की पर्याय है। निश्चय में तो है ही नहिं। यह बंध का अभाव रूप-मोक्ष मार्ग, सो भी व्यवहार पर्याय है। उत्पाद व्ययरुप पर्याय है, वह ध्रुव नहिं है। स्वभाव के आश्रित शुद्धोपयोग का परिणमन सो भी व्यवहार है। मोक्ष भी व्यवहार है। एक अपूर्ण पर्याय है, एक पूर्ण पर्याय है। दोनों व्यवहार है। पर्याय स्वयं व्यवहार है। आश्रय लेने वाली पर्याय व्यवहार है, जिस का आश्रय लेने में आता है, सो वस्तु निश्चय है। व्यवहार का अर्थ विकल्प और भेद नहिं, पर्याय अंश है, ईसलिये व्यवहार है। व्यवहार की व्याख्या क्या? ध्रुव में उत्पाय व्यय का होना सो व्यवहार है। यही सिद्धांत है। आगम पद्धति में दया, दान का भाव को व्यवहार कहते है, अध्यात्म पद्धति में तो शुद्ध पर्याय को भी व्यवहार कहते है। द्रव्य शुद्ध निश्चय है। द्रव्य जो है, सो निष्क्रिय है। त्रिकाली ध्रुव-का अवलंबन से जो निर्मल पर्याय हुई, यह मोक्ष का मार्ग सक्रिय है। ध्रुव में सक्रियपणा,-परिणमन-कहां है? द्रव्य स्वभाव तो निष्क्रिय है। विकल्प है सो बंध का परिणमनरुप सक्रिय है, मोक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का मार्ग होवे, सो निर्मल पर्यायरुप परिणाम, सक्रिय अवस्था है। और पूर्ण पर्याय मोक्षरुप सक्रिय अवस्था हुई।

अहो! वितराग कथित तत्व अलौकिक है! अहो! वितराग द्वारा अनुभव कीया हुआ पूर्ण मार्ग! श्रीमद् राजचंद्रजीने कहा है न! "अहो! यह देह की रचना! अहो यह चेतन का सामर्थ्य! अहो! ज्ञानी! अहो ज्ञानी की गवेषणा! अहो! ज्ञानी का ध्यान! अहो! ज्ञानी की समाधि! अहो! उन के वचन का योग! अंतर की बात में वितरागता के भास में ये उद्‌गार है। आ...हा...हा...हा...हा...

भगवान आत्मा, त्रिकाली तत्व, ऐसा निश्चय स्वरुप में सक्रियता, या बंध मोक्ष कैसे हो? निश्चय मोक्षमार्ग का परिणमन भी सक्रिय है। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य द्रव्य निष्क्रिय है। निष्क्रिय अर्थात् पर पदार्थ की क्रिया करे ऐसा नहिं, राग करे यह भी निष्क्रिय नहिं, लेकिन मोक्षमार्ग की पर्याय भी जीस में नहिं है। वस्तु तत्व निष्क्रिय, यह मोक्ष की सक्रिय पर्याय को कैसे करे? शुद्ध निश्चय नयसे न बंध है, न मोक्ष है। वास्तव में, अशुद्ध निश्चय नयसे ही बंध है। अशुद्ध निश्चय अर्थात् व्यवहार पर्याय अर्थात् एक देश शुद्ध नय है अर्थात् व्यवहार है, इसलिये बंध के नाश का यत्न भी अवश्य करना चाहीए। अर्थात् ध्रुव का प्रयत्न, अंतर लक्ष करना चाहिए।

यहां यह अभिप्राय है कि, सिद्ध समान अपना शुद्धात्मा, अर्थात् शुद्ध....शुद्ध...शुद्ध...द्रव्य वस्तु आत्मा, वितराग निर्विकल्प समाधि में लीन पुरुषो को उपादेय हैं। भगवान आत्मा, उस औरकी बिना राग की श्रद्धा, ज्ञान और शांति, ऐसी अरागी,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वितरागी श्रद्धा, ज्ञान और शांति के काल में, यह आत्मा उपादेय अर्थात् दृष्टि में आता है। यह पर्याय बिनाराग की हुई, निर्विकल्प अभेद परिणति हुई, इस पर्याय में शुद्धात्मा पर लक्ष है, यह उपादेय है, ध्रुव उपादेय है।

भगवान आत्मा, वस्तु जो ध्रुव...ध्रुव...ध्रुव....उसके पर दृष्टि देनेवाली दशा, उस में स्थिर होनेवाली दशा को निर्विकल्प शांति कहते है। उस में यह (विद्यमान) द्रव्य उपादेय है, अन्य सब हेय है। क्षायिक सम्यकत्व की पर्याय प्रगट होनेपर भी, द्रव्य की उपादेयता के काल में हेय है, एक ही बात है। क्षायिक सम्यकत्व, जो द्रव्य का लक्षसे होता है, सो भी हेय है, क्यों की द्रव्य में जोर देनेका है। उसमेंसे नयी पर्याय प्रगट होती है। क्षायिक सम्मकित का लक्ष से चारित्र नहिं होता है। निश्चय मोक्षमार्ग हेय है, मोक्ष भी हेय है, द्रव्य ही उपादेय है। यह तो "परमात्म प्रकाश" है। परमात्मा द्रव्य वस्तु एक मात्र आदरणीय है, अन्य कुछ आदरणीय नहिं।

वस्तु...वस्तु...वस्तु...शाश्वत आनंदधाम रूप, ध्रुव द्रव्य, यह एक ही लक्ष करने योग्य है। और सब प्रगट हुई पर्याय भी लक्ष करने योग्य नहिं है। यह अपेक्षा से हेय कहने में आता है।

मुनिको छठवे गुणस्थानमें तीन कषायका अभावरूप चारित्र प्रगट है। उसको भी यह तिन कषायका अभावरूप चारित्र उपादेय नहिं है। आ...हा...हा...हा....क्यों कि द्रव्य अंतरमें एकाकार पडा है। वही परमेश्वर द्रव्य त्रिकाल ध्रुव आदरणीय है, अन्य कुछ आदरणीय नहिं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान, तू क्या अपूर्ण हो, जिससे तेरेको पर के सहारे रहना पडे ! भगवान आत्मा, सत् शाश्वत, ध्रुव है। उसका लक्षसे प्रगट हुई पर्याय, सो व्यवहार भी हेय है। एक चिदानंद ध्रुव शाश्वत प्रभू, सो निज मंदिर में आदरने लायक है। भगवान आत्मा, द्रव्यार्थिक नय का विषय, अर्थात् द्रव्य वस्तु, महा परमेश्वर चैतन्य महाप्रभू, यह ध्रुवमें लक्ष कर अर्थात् उसको उपादेय कर, उसका आश्रय करना यही मोक्षमार्ग है, मोक्ष भी उससे होता है, ईस लिये यही एक आदरणीय है।

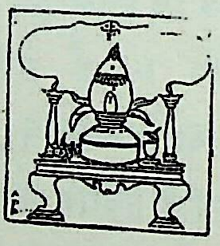

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टि का विषय।

वस्तु त्रिकाली है, जीसका आश्रय से निर्मल पर्याय होती है। पर्याय का आश्रय से पर्याय निर्मल नहीं हो सकती। गुरुका वचन प्रति लक्ष जाता है तब तक निमित्त, शास्त्र, गुरु और ज्ञान सब विनाशी, लेकिन ध्रुव की और नजर लगे तब ज्ञान अविनाशी होता है। अनुभव और सम्यग्दर्शन अवस्था है। उसको (सम्यग्दर्शन की पर्याय को) और आत्मा को त्रिकाली संबंध नहीं है। क्योंकि वह (अवस्था) बदल जाती है। दर्शन निमित्त का स्वीकार नहीं करता है। परंतु बाद में उपचार से निमित्त कहने में आता है। पीछे से ज्ञान निमित्त को जानता है। दर्शन के समय निमित्त नहीं है। पीछे से निमित्त कहलाया। निमित्त को रागसे जानाता है तबतक ज्ञान विनाशी-अनित्य है। वह (विनाशी ज्ञान) अविनाशी को लाभ करता नहीं। वह तो पूर्व का ही उघाड (क्षयोपशम) है। खुदने ही जब स्वयं की ओर ढलकर निर्णय किया तब निमित्त कहने में आता है। जीस कालमें अविनाशी ज्ञान होता है उस कालमें निमित्त का सवाल (प्रश्न) ही नहीं रहता! निर्णय सामान्य के प्रति ढल गया, तत्काल संसार छूट गया। संसार छूटने का कारण द्रव्य स्वयं है। निर्णय होने के बाद निमित्त कहने में आता है। ध्रुव शक्ति साध्य है, मोक्ष साध्य नहिं है। मोक्ष प्रगट होता है। प्रगट-अप्रग पर्याय दृष्टि में होता है। ध्रुव नित्य प्रगट है। प्रगट अप्रगट वस्तु में सवाल ही नहीं। प्रगट अप्रगट अवस्थामें ही वस्तु ध्रुव तो नित्य प्रगट ही है। साध्य वस्तु, साधन निर्णय (व्यवहार)। ध्रुव लक्ष में आने पर सहज निर्मल अवस्था प्रगटती है। पुरुषार्थ नहीं। सहज पुरुषार्थ हो जाता है। आश्रय पर्यायका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कैसा ! आश्रय स्वभावका ! ध्रुव और मोक्ष दोनों साध्य होने पर तो दो भंग पड जाय। दर्शन का विषय भंग (दो) नहीं है। सम्यग्दर्शन व केवलज्ञान खुल जाय सो निश्चयसे आदरणीय नहीं है। साध्य साधन का भेद निश्चय में है ही नहिं : भेद का जोर आवे तो अभेद पर जोर नहीं आता।

[गु. आत्मधर्म अंक १०-११ में से अनुवाद]

आत्मा द्रव्यदृष्टिसे अपरिणमन स्वरुप है, अर्थात् द्रव्य-दृष्टि से पुण्य-पाप का विकार होने का सामर्थ्य आत्मामें नहिं है। पर्याय दृष्टि से परिणामी है, स्वभावमें शुद्ध पर्याय रुप भी परिणमता है। और अशुद्ध पर्यायरुप भी परिणमता है। शुद्ध वस्तु दृष्टि से आत्मा अपरिणमन स्वरुप है अर्थात् कुटस्थ है, लेकीन तद्दन कुटस्थ है ऐसा नहिं है; कथंचित-कीसी अपेक्षा से कुटस्थ है और कथंचित्-कीसी अपेक्षा से परिणामी भी है। बंध और मोक्ष पर्याय है, सो निमित्त की अपेक्षा रखनेवाली पर्याय है, निरपेक्ष दृष्टिसे आत्मा अपरिणामी है। अभेद दृष्टि से आत्मा अपरिणामी है। और द्रव्य गुण पर्याय का भेद पाडने पर आत्मामें शुद्ध निरपेक्ष पर्याय है, इसलीये आत्मा परिणामी भी है। सिद्ध भगवंत के अनंत गुणमें भी परिणमन हो रहा है, ईसलीये आत्मा परिणामी है। लेकीन द्रव्य दृष्टि से—अभेद दृष्टि से आत्मा अपरिणामी है।

[समयसार प्रवचन भाग-५. पृष्ठ २५२-५३.
गाथा-२८० का प्रवचनमेंसे अनुवाद]

卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३)

तृतिय विभाग।

ॐ

-: तत्त्व चर्चा :-

[ईस विभाग में श्री सोगानीजी के साथ साधर्मी मुमुक्षुओं को चर्चा व प्रश्नोत्तर हुआ था, वह यथा संभव संपादन करके लिया गया है। —संपादक]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ॐ

श्री सद्‌गुरुदेवाय नमः।

(१)

"परिणाम योग्यतानुसार हो जाता है, मैं ओ (परिणाम जीतमा) नहिं" उस में किसीकुं ऐसा लगे कि क्या परिणाम जड़ में होता है? अगर निश्चयाभास लगता है। लेकिन ऐसा कहन में तो अपरिणामी का जोर बताना है।

(२)

प्रश्नः—आप शुद्ध पर्याय को दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते हैं या ज्ञान की अपेक्षा से?

उत्तरः—दृष्टि की अपेक्षा से भिन्न कहते है। ज्ञान की अपेक्षा से तो नहिं। दृष्टि करने का प्रयोजनमें भिन्नता का जोर दिये बिना द्रष्टि अभेद नहिं होती, तो दृष्टिकी अपेक्षासे ही भिन्न कहते है, ओर अपनी तो यही द्रष्टि प्रधान ही शैली है, तो ऐसा ही कहते है।

(३)

निर्विकल्प होते ही अपनेमेंसे ही एक ज्ञान उघड़ता है, जो दोनो (सामान्य विसेष) पहलू को सहज जान लेता है, उसको प्रमाण ज्ञान कहते है।

(४)

परिणाम और त्रिकाल-अपरिणामी दो होकर ही आखी एक वस्तु है। जो प्रमाण का विषय है। वेदांतादि तो अकेला निष्क्रिय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निष्क्रिय कहते है । वे परिणामको मानते ही नहिं है, तो निष्क्रिय भी जैसा है वैसा तो उसकी मान्यता में आता ही नहिं है। यहां तो परिणामको गौण करके निष्क्रिय कहा जाता है।

(५)

एक चक्र का अनेक पासा है। सब पासा अलग अलग डीझाईन का है। जब एक पासा की बात चलती हो तब दूसरे पासा की बात नहिं समजनी चाहिअे। अैसे वस्तुके अनेक धर्मोंमें से भिन्न भिन्न धर्मोंकी बात चलती हो तब एक दूसरे में गोटाला नहिं होना चाहिए।

(६)

[अंतः तत्व और बहिर तत्वकी अपेक्षाअें बताते हुए कहा] शुद्धपर्याय बहिर तत्व है; ध्यान बहीर तत्व है (तब) ध्रुवतत्व (परम परिणामिकभाव; कारणपरमात्मा) अंतः तत्व है। दो घर की बात चलती हो, (तब) उसमें तीसरा घरकी टांग (बात) नांखने से गोटाला हो जाता है। ध्रुवतत्व अंतः तत्व है तब शुद्ध पर्याय बहीर तत्व है। (जब) शुद्ध पर्यायको अंतः तत्व कहवे तब अशुद्ध पर्यायको बहीर तत्व कहते है। अशुद्ध पर्यायको अंतः तत्व कहवे तब कर्मको बहिर तत्व कहते है। कर्मको अंतः तत्व कहवे तब नोकर्मको बहिर तत्व कहते है। अैसे सब घटा लेना।

(७)

सिद्ध (पर्याय) से भी में अधिक हूं क्युं कीं सिद्ध (दशा) तो एक समय की पर्याय है, और में तो ऐसी ऐसी अनंत पर्यायों का पींड हूं।

(८)

जैसे मेरु पर्वत अडीग है, मैं भी (स्वभाव से) वैसा ही अडीग हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरुमें तो परमाणुं आता जाता है, लेकीन मेरेमें तो कुछ आता जाता नहीं, ऐसामें अडीग हूं।

(९)

मैं वर्तमानमें ही मूक्त हू, आनंदकी मूर्ति हूं, आनंदसे भर· चक समुद्र ही हूं, एसी द्रष्टि हो, तो फीर मोक्षसे भी प्रयोजन नहीं, मोक्ष हो तो हो, न हो तो भी क्या ? (पर्याय की इतनी गौणता द्रव्य द्रष्टिमें हो जाती है) मेरेकुं तो वर्तमानमें भी आनंद आ रहा है, फीर परिणतिमें तो मोक्ष होगा ही (ऐसी प्रतित आ जाती है) लेकीन मेरेको तो उस से भी प्रयोजन (द्रष्टि) नहीं।

(१०)

'कुछ करना' (कतृत्व बुद्धिसे) सो मरना बराबर है। प्रथम से ही 'कुछ करने'का भावमें मरने जैसा बोझा लगता था। शुभ परिणाम होते मैं भट्टीमें जल रहा हूं ऐसा लगता था। समुद्र का जलमेंसे एक बुंद उडकर बहार रेतमें पडी तो उस बुंदको रेत चुसकर खतम कर देगी, और गरम रेत होवे तो बुंद तुरत खतम हो जावे, वैसे ही परिणाम बहारकी ओर जाता है उसमें दुःख ही दुःख है।

(११)

द्रव्य द्रष्टिका हिसाबसे तो शुद्ध पर्याय ही पर द्रव्य है, मेरा अस्तित्वमें ओ नहिं, रागकी तो बात ही क्या ?

(१२)

पर्यायमें तीव्र अशुभ परिणाम हो, या उत्कृष्ट में उत्कृष्ट शुद्ध पर्याय हो. मेरेमें (एकरुप द्रव्य स्वभावमें) कुछ भी बिगाड़ सुधार नहिं होता, मैं तो वैसाका वैसा ही हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१३)

(द्रव्य दृष्टि के जोरमें) केवलज्ञानसे भी हमारे प्रयोजन नहिं। मोक्षसे भी प्रयोजन नहिं, ओ तो हो ही जाता है।

(१४)

ज्ञानका विषय दृष्टिका विषयका प्रयोजन साधने पुरता लक्ष में लेना ठीक है, बाकी उसका (ईससे अधिक) प्रयोजन नहिं है।

(१५)

सून सून करके मिल जायगा ओ दृष्टि जुठ है। (कार्य सिद्धि) अपने (अंतर पुरुषार्थ)से ही होगा। सूनना, सूनाना, पढ़ना ये सब (बहीरमूखीभाव, कार्यसिद्धि के लीये) बेकार है। ओ हो तो भले हो, लेकीन उसका खेद होना चाहीए, निषेध आना चाहीए।

(१६)

मैं पहले तो सब सून लूं, जान लूं, पीछेसे पुरुषार्थ करुंगा। ऐसे पीछेवाले सदा ही पीछे पीछे ही रहेगा। (यहाँ तो) वर्तमान ईसी क्षणसे ही करनेकी बात है।

(१७)

व्यवहार नयको अभूतार्थ कहनेसे संक्षेपमें परिणाम मात्र (जो व्यवहार नयका विषय है) अभूतार्थ है (ऐसा कहा है)। चाहे परिणाम अशुभ हो, शुभ हो, या शुद्ध हो।

(१८)

अपना परिणाम तक ही अपनी (कार्य) सीमा है। ईससे आगे कोई द्रव्य जा सकते नहीं।

(१९)

परिणाम अपना है तो भी उसको आप खुद ही (कर्ता बुद्धिसे) पलट सकते नहीं। और परिणाममें कर्ता-कर्मपनेका धर्म है। ईस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लीये ओ तो पलटेगा ही,–(जब लग) दृष्टि बहार झुकी है; दृष्टि का प्रसार अपनेको छोडकर बहारमें है, तो (तब लग) परिणाम भी बहार झुकेगा। और दृष्टि अपना स्वभावकी ओर है तो परिणाम भी अपनी ओर झुकेगा। अपनेको तो परिणाम भी पलटाना (फेरफार करना) नहिं है। मैं तो अपरिणामी हूँ और पलटना मेरा धर्म ही नहिं है। ओ तो परिणामका धर्म है। दृष्टिके हिसाबसे तो शुद्ध परिणाम भी मेरेसे अलग ही है। ज्ञान उसको अपना अंश जान लेता है।

(२०)

प्रश्नः—प्रथम पात्रताका क्या स्वरुप है ?

उत्तरः—अपना द्रव्यमें दृष्टिको तादात्म्य करना, प्रसारना। बहिर्मुखमें तादात्म्य करती दृष्टिको अपनेमें तादात्म्य करना ओ ही प्रथम पात्रता है।

(२१)

(आत्मिक आनंदके विषयमें आपने कहा) जब एक बार आनंदकी घूंट पी लीया, तब तो बार-बार यही घूंट पीनेके लीये अपनी ओर आना ही पडेगा। दूसरी कोई जगह परिणतिको रस ही नहिं पडेगा। बार-बार अपनी ओर आनेका ही लक्ष रहेगा, दूसरा सब रस उड जायगा।

(२२)

(सहज पुरुषार्थके विषयमें आपने कहा) पुरुषार्थ करुं-पुरुषार्थ करुं यह बात भी नहिं है (सहज पुरुषार्थका ऐसा स्वरुप नहिं है)- मैं वर्तमानमें ही अनंत पुरुषार्थका पिंड हूं (ऐसा स्व आश्रयमें) पर्याय द्रव्यकी ओर ढल जाती है। ईसलीये (उपदेशमें) पर्यायकी अपेक्षा पुरुषार्थ करनेका कहनेमें आता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२३)

मैं खुद ही वर्तमानमें भगवान हूं, (ईसमें) भगवान होना भी क्या है ? अपना स्वभावमें दृष्टिका प्रसार होते, पर्याय मेरी ओर झुकते झुकते पर्यायमें केवलज्ञान-सिद्धदशा आदि होता ही है। मेरे तो इससे भी प्रयोजन (दृष्टि) नहिं।

(२४)

पहले तो (तत्वकी) धारणा बराबर होनी चाहिए। लेकीन धारणा अंतरमें उतरे तब सम्यक्ज्ञान होता है। धारणामें भी ईधरका (आत्माका) लक्ष होना चाहीए।

(२५)

अपना त्रिकाली अस्तित्वमें अपनापन होनेसे पर्यायबुद्धि छूट जाती है।

(२६)

विभाव तो मेरेसे बहोत ही दूर है। यहां तो परिणाम (शुद्ध पर्याय) भी मेरेसे भिन्न है, मैं तो अपरिणामी हूं, एक समयका परिणामके साथ बहेता नहिं हूं।

(२७)

प्रश्नः—द्रव्यको परिणामी कहवे तो क्या हर्ज है ?

उत्तरः—परिणाम-परिणामी कहनेमें थोडा शब्दफेर है। परिणामसे परिणामीको बतानेमें भी परिणामका लक्ष जाता है। ईसलीये (परिणामका लक्ष नहिं करनेका हेतुसे) परिणाम-परिणामी भी नहिं मगर अपरिणामी और परिणाम ऐसा कहो।

(२८)

शास्त्रमें व्यवहारकी कीतनी बात, जीव स्वछंदमें न चड

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाय ईस हेतुसे होती है। तो ईस बातको पकड कर जीव गोटाला में चडजाता है (व्यवहारको उपादेय मान लेता है।)

(२९)

मैं (त्रिकाली) परिणाममें नहिं जाता। (त्रिकाली स्वभावमें अपनापन होने) परिणाम सहज ही मेरी ओर आता है।

(३०)

मैं वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूं, कृतकृत्य हूं। मेरे कुछ करना धरना है ही नहिं, ऐसी दृष्टि होते, परिणाममें आनंदका अंश प्रगट होता है और बढता बढता पूर्णता हो जाती है।

(३१)

प्रश्नः—शुद्ध परिणाममें द्रव्य व्यापक है की नहिं?

उत्तरः—सारा द्रव्यकी अपेक्षासे देखा जाय, तो द्रव्य परिणाम में व्यापक है, मगर दृष्टिका विषयकी अपेक्षासे तो द्रव्य अपरिणामी, परिणाममें व्यापक नहिं है।

(३२)

दृष्टिका विषयभूत द्रव्य एकान्ते कुटस्थ ही है। पर्यायकी अपेक्षा से पर्याय एकान्त अनित्य ही है।

(३३)

प्रश्नः—निर्विकल्प उपयोगमें कैसा आनंद आता है?

उत्तरः—निर्विकल्प उपयोगका सुखकी तो क्या बात कहे! लेकीन समजानेके तोरसे गन्ना (शेरडी)का रसकी जैसे घूंट पीते हो, वैसे आनंदकी घूंट एक पीछे एक चलता ही रहता है, उसमेंसे निकलनेका भाव ही नहिं आवे।

(३४)

[शुभाशुभ परिणाम होने पर अंतरंग स्थिति बताते हुए कहा]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभ परिणामका कालमें ईस ओरका (स्व सन्मूखताका) झुकाव मंद होता है, शुभ परिणामका कालमें इस ओरका थोडा ज्यादा झुकाव होता है। दृष्टिका झुकाव तो वैसाका वैसा ही है। लडाईके कालमें बहार लडाईकी क्रिया होती है और रागमें अशुभ राग की क्रिया होती है। और मैं तो मेरेमें ही अचल रहता हूं। मेरेमें तो उसी समय रागकी क्रियाका भी अभाव है।

(३५)

मैं अडीग हूं; किसीसे डिगनेवाला नहिं हूं; ऐसा निश्चय करके निर्णयका फल आनंद आना चाहिए, तब ही निर्णय सचा है।

(३६)

(भेदज्ञानका स्वरुप) हर समय विकल्पसे भेदज्ञान करना नहिं पड़ता, लेकिन सहजरुप हो जाता है।

(३७)

दृष्टि द्रव्यमें तादात्म्य हो जाने पर भी चारित्र-परिणति कुछ च्युत हो कर परकी ओर चली जाती है। तो भी स्वरुपाचरणकी च्युति तो होती ही नहिं।

(३८)

(स्वरुप) दृष्टि होने पर भी चारित्र गुणकी योग्यता ही ऐसी होनेसे चारित्र गुण पुरा (शुद्ध) परिणम नहिं जाता। श्रद्धा गुण का स्वभाव ही ऐसा है की एक ही क्षणमें द्रव्यमें पुरा पुरा व्याप्त हो जाना। चारित्र गुणका स्वभाव ही ऐसा है के क्रम क्रमसे ही पुरा होना। ऐसा दो गुणका स्वभाव ही अलग अलग है।

(३९)

जब दृष्टि अपने स्वरुपमें तादात्म्य होती है तो थोडा काल राग

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आता तो है, लेकिन राग लंगडा हो जाता है। उसको आधार नहिं रहता।

(४०)

मैं तो कभी चलने वाला नहिं ऐसा खूंटा हूं। परिणाम आते है और जाते है, मगर मैं तो खूंटाकी माफिक अचलित ही रहता हूं।

(४१)

बहिर्मूख होनेसे ज्ञान खीलता नहिं; और अंतर्मूख होनेसे भीतरसे ही केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। अपनी और ही देखनेकी बात है।

(४२)

(एक जिज्ञासु) आत्माको ही पकडनेकी बात है! (भाईश्री) पकडना क्या? मैं तो स्वयं हूं ही। पकडना-फकडना सब परिणामकी अपेक्षासे कहनेमें आता है। परिणाम अपनी और झुका तो परिणामकी अपेक्षासे आत्माको पकडा ऐसा कहते है।

(४३)

अपना द्रव्यमें दृष्टि तादाम्य होते ही ज्ञान प्रमाण हो जाता है तब ज्ञान (अन्य) सब बातें (यथार्थपणासे) जान लेता है।

(४४)

जब अपनी ओरसे खीसकर बहारमें जानेका ही निषेध है, तो अशुभमें जाकर परमें रस पड़जावे तब तो दृष्टि अपने द्रव्य में रही ही कहां? ओ तो परमें चली गई!

(४५)

"अनकान्त पण सम्यक् एकान्त एवा निजपदनी प्राप्ति सीवाई अन्य हेतुए उपकारी नथी" श्रीमद्का यह वाक्य मुझे बहोत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रिय लगता है।

(४६)

दूसरेसे सूनना-मांगना सब पामरता है, दीनता है, भीखारी-पणा है। मेरे मैं क्या कमी है, तो मैं दूसरेसे मांगु ! मैं ही परिपूर्ण हूं......

(४७)

"अहो ! जे भावे तिर्थंकर-गोत्र बंधाय ते भाव पण नूकशान कर्ता छे" यह बात कहनेकी किसकी ताकत है ? ओ तो गुरुदेवका ही सामर्थ्य हैं !

(४८)

तिर्थंकरकी दिव्य-ध्वनिसे भी लाभ नहिं होता, तो फीर और कीससे लाभ होता होगा ? वह (दिव्य-ध्वनि) भी अपने को छोडकर एक (भिन्न) विषय ही है।

(४९)

विकल्पसे और मनसे कीया हूआ निर्णय सचा नहिं। अपनी और दृष्टिका तादात्म्य करनेसे ही, अपनेसे कीया हूआ निर्णय ही सचा निर्णय है। पहले विकल्पसे अनुमानसे निर्णय होवे, उसमें भी लक्ष तो अंतरमें ढलनेका ही होना चाहीए।

(५०)

मैं तो अडीग हूं। किसीसे डीगनेवाला नहिं हूं। जैसे ईस देहाकारमें स्थित आकाश अडिग है-हीलता-चलता नहीं, वैसा मैं भी अडीग हूं।

(५१)

अंतरमें आनंदकी घूंट पीते बहारमें आना गमे हीं कीसको ? बहारमें आते तो बोजा ही बोजा लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५२)

प्रश्नः—चतुर्थ गुणस्थानमें (निर्विकल्प) अनुभव कितना समय के अंतरालमें आता होगा ?

उत्तरः—ऐसे अनुभवका कालकी कोई मर्यादा नहिं है। ओ तो विशेष अशुभमें हो तो काल लंबा भी हो। और शुभमें हो तो जल्दी जल्दी भी अनुभव होवे। कीसीको महीनामें दसबार भी हो सकता है।

(५३)

चैतन्य गठडी मैं ही हूं; ऐसी पक्कड हो जानेसे मति श्रुतज्ञान अंतरमें ढल जाता है। इसली अंतरमें ढलनेका (उपदेशमें) कहनेमें आता है।

(५४)

मैं वर्तमानमें ही समजणका पिंड हूं।

(५५)

[असाताके उदयमें] सम्यक्‌दृष्टिको दुःखका वेदन होता है; लेकीन अपना स्वभावकी अधिकताका वेदनमें ओ वेदनकी गौणता हो जाती है। ज्ञानमें शांतिका वेदनकी साथ साथ दुःखका वेदन आता है; मगर ओ वेदन मूख्य नहिं होता है। अपना स्वभावकी ही ज्ञानीको अधिकता रहती है; अपना स्वभावकी अधिकता कभी छूटती नहिं।

(५६)

जब दृष्टि अपना स्वभावमें प्रसर जाती है, तब पांच समवाय अपने ज्ञानमें ज्ञेय हो जाता है।

(५७)

अज्ञानी उत्पाद-व्ययकी साथ साथ चले जाता है (परिणाम

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का उत्पादव्यय होने पर पर्यायदृष्टि होनेसे स्वयंका उत्पाद-व्यय अनुभवता है) ओर ज्ञानीने नित्य (द्रव्य)में अपना अस्तित्व स्थापित कीया है, तो उत्पाद-व्ययके साथ चला नहिं जाता है, मगर उत्पाद-व्ययको जान लेता है।

(५८)

ज्ञानकी पर्याय आती है अंदरसे; और (अज्ञानीको) बहार का लक्ष होनेसे दिखती है बहारसे आती है; ईसलीये अज्ञानीको, परसे ज्ञान होता है, ऐसा भ्रम हो जाता है।

(५९)

अनंत तिर्थंकर हो गये। मगर अपने तो गुरुदवश्री सबसे अधिक है-जैसे अपनेको धनकी जरुरत हो और कोई लखपति अपनी जरुरत अनुसार धन देवें, तो वह अपनेलीये दूसरा करोड-पतिसे भी अधिक है; ऐसे गुरुदेवश्री अपने लीये तिर्थंकर से भी अधिक है; जीससे अपनेको हित हुआ है।

(६०)

(द्रव्यलिंगीकी भूल) द्रव्यलिंगी होकर ११ अंग तक पढ लेते लेकीन त्रिकाली चैतन्य दलमें अपनापणा नहिं करते ओही भूल है; दूसरी कोई भूल नहिं है।

(६१)

पू. गुरुदेवश्री ने शास्त्र पढते समय कहा जैसे वेपारमें चोंपडेका (वहीका) पाना फेरते हैं वैसे ये पाना है कोई फर्क नहिं; अगर ईश्वर की (ध्रुव चैतन्य की) दृष्टि नहिं; तो दोनों समान है।

(६२)

तिर्थंकर योग और वाणी मीली तो ठीक है। भविष्यमें भी यह भावसे मीलेगी, ऐसी उसमें होंश आती है; तो उससे कैसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छूटेगा ? लाभ मानने है तो कैसे छोडेगा ? उसस (ऐसा भावसे) नुकशान ही है, लाभ नहिं, लाभ तो मेरेसे ही है-वर्तमानसे ही मेरेसे लाभ है-ऐसा जोर नहिं होवे तो परमें अटक जायगा।

(६३)

प्रश्नः—आत्मानुभव होनेके बाद ज्ञानीजीव न्याय नितिसे धनादि की प्रवृत्ति करने है न ?

उत्तरः—करना फरना नहिं रहा। जो पर्याय आनेवाली है, ओ योग्यतानुसार आजाती है; मगर उधर ईसका लक्ष नहिं; लक्ष ईधर (अंतर ज्ञायकतत्व)का है। अंतरमें एकत्व हुआ, पीछे परिणाम (विकार) मर्यादीत हो जाते है, लेकीन मर्यादीत ही होता है-होता है; ऐसा कहनेसे उसकी दृष्टिमें परिणामको मर्यादामें रखनेका ही प्रयत्न रहता है अर्थात् परिणामको ही देखते रहते है; इसलीये कहते है; जो परिणाम आनेवाला हो वो हो जाता है। परिणाम की मर्यादा को देखते रहने से अपरिणामी का जोर छूट जाता है।

(६४)

तिव्र प्यास लगनी चाहीए, प्यास लगे तो जैसे तैसे बुजानेका प्रयत्न कीये बिना रहवे नहिं।

(६५)

प्रश्नः—अनुभवके लीये विचार-मनन-घूंटणमें रहना चाहीए ?

उत्तरः—पर्यायमें बैठ कर घूंटण-मनन करनेमें पर्यायमें ठीकपणा रहता है और द्रव्यमें बैठनेसे घूंटण-मनन सहज होता है। घूंटण आदि में जोर नहिं, सहज होता है। जोर तो ईधर (अंतर तत्व)का रहता है। पर्यायमें बैठ कर घूंटण करनेसे अंदरमें आ सकते नहिं।

(६६)

[अपना पूर्व-जीवनके बारेमें कहा] मुझे पहलेसे ईन्द्रिय-विषयों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तरफका रस नहिं था। और विकल्पोमें कषायकी भट्ठी जलती हो ऐसा लगता था। ऐसा वेदनमें, ओ क्या है—क्या है ऐसे विचारकी धूनमें रहता था। (इतनी धून थी, कि) मुझे शहरका खास परिचित रास्ताके अलावा कोई रास्ता आदिका भी पत्ता नहिं है। और कोई बातका ख्याल नहिं रहता था। विचारका जोर पहलेसे ही था। उसमें तिक्षणता थी। दिगम्बरशास्त्र देखा तो इधरसे निकला तो उधर क्रियाकांडमें पड़ा, उसमें भी कोई शांति नहिं मीली, ओ भी छोड दिया। पीछे 'आत्मधर्म' देखते ही चोंट लगी और सब बात ख्यालमें आने लगी।

(६७)

सब बातका गुरुदेवश्रीने मशाला तैयार कर रख्खा है, तो कोई बात विचारनी नहिं पड़ती, नहिं तो साधक हो फीर भी मशाला तैयार करना पड़ता है।

(६८)

प्रश्नः—अनुभव होनेके बाद परिणाममें मर्यादा आ जाती है न? विवेक हो जाता है न?

उत्तरः—विवेककी बात एकबाजु रख्खो एकदफे विवेकको छोड दो! (पर्याय की सावधानी छोड दो) परिणाम मात्र ही मैं नहिं हूं, मैं तो अविचलित खुंटा हूं। मेरेमें क्षणिक अस्तित्व है ही नहिं। विवेक के बहाने भी जीव परिणाममें एकत्व करते है।

(६९)

(अज्ञानीको) कषायकी मंदतामें थोडा विषय छूटते, तो इसमें ठीक मानने लगते है। लेकीन ओ भी तीव्र कषाय ही है, उसमें कषाय भरा पड़ा है।

(७०)

प्रश्नः—शुरुआत वालेको अनुभवका कैसे प्रयत्न करना?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरः—मैं परिणाम मात्र नहिं हूं, त्रिकाली ध्रुवपणेमें अपनापणा थाप देना, ओ ही उपाय है।

(७१)

प्रश्नः—शास्त्रमें तो प्रयत्न करना, प्रयत्न करना, ओ बात आती है।

उत्तरः—प्रयत्न करनेका कहनेमें आता है, प्रयत्न भी होता है; लेकीन प्रयत्न भी तो पर्याय है! मैं तो पर्याय मात्रसे भिन्न हूं, प्रयत्न क्या करे! सहजरुप होता है। प्रयत्न आदिका 'होना' पर्यायका स्वभाव है। मैं उसमें न आता हूं, न जाता हूं। मैं त्रिकाली हूं, ऐसी दृष्टिमें प्रयत्न सहज होता है।

(७२)

विचार मंथन भी थक जाय, शुन्य हो जाय, तब अनुभव होता है! मंथन भी तो आकुलता है। एकदम तीव्र धगशसे अंदरमें उतर जाना चाहीए।

(७३)

प्रश्नः—रामचंद्रजीको सीताजीके लीये लडनेका भाव आया, और धर्मराजाको द्रौपदीकी साडी खींचीजाने पर भी बचानेका भाव नहिं आया था, ईसका क्या कारण?

उत्तरः—ओ तो परिणामोकी योग्यता ही ऐसी भिन्न भिन्न होती ह। अनेक प्रकारके कषायोमेंसे जो होनेवाले है, ओ होता है, उसको करे छोडे क्या? उस परिणाम मात्रसे सम्यग्दृष्टिको भिन्नता रहती है। मैं करनेवाला ही नहिं हूं, ऐसा रहना ही खास बात है।

(७४)

शास्त्रम परिणाम देखनेकी बात आती है, तो (अज्ञानी) परिणाम देखते रहते है, वस्तु ध्रुव रह जाती है। परिणामको ही देखते रहनेमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिणामकी साथ एकता होती है। परिणामीमें एकता नहिं रहती। अनित्यमें नित्य चला जाता है। पर्यायकी शुद्धि ऐसी है और ऐसी है–ऐसी पर्यायकी बातमें रस पड़जानेसे नित्यका जोर नहिं रहता। पर्यायमें जोर करनेकी तो आदत पडी ही है।

(७५)

आखी वस्तु (प्रमाणका विषय) दीखानेमें; नित्य और अनित्य दीखनेमें आता है। इसमें अनित्य दुसरेका नहिं है, ऐसा दिखानेके लीये है, मगर दृष्टिका विषयमें तो नित्य ही हूं, और अनित्य मेरेसे भिन्न ही है। उसका (उत्पाद-व्ययका) भाव और मेरा (ध्रुवका) भाव विरुद्ध है।

(७६)

शक्तिकी तरफ देखे तो इतना भारी भारी लगता है की आखा जगत फीरजावे तो भी ओ (अनंत शक्तिओंका पिंड) नहिं फीर सकता है, ऐसा घनरुप है। उसमें कुछ विचलीतता ही नहिं होती है॥

(७७)

(अज्ञानी) परिणाममें बैठकर शक्ति को देखता है–"शक्ति ऐसी है-ऐसी है." उसमें तो देखनेवाला और शक्ति दो अलग चीज हो जाती है. जैसा दुसरा दुसरेकी बात करता है, वैसा ओ हो जाता है।

(७८)

दर्पणमें जो पर्याय दीखती है, ओ तो उपर-उपर है। अंदरमें जो दल पडा है, वो तो जैसा का तैसा है–जो पर्यायरुप होता ही नहिं। ऐसे त्रिकाली स्वभावका दलतो वैसाका वैसाही है। पर्याय में आता नहिं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(७९)

श्रद्धामें त्रिकालीपणा आ गया तो विकल्पसे भिन्नता हो गई, ओही मुक्ति है। चारित्रमें मुक्ति हो जायगी।

(८०)

प्रश्नः—वस्तु स्वभावका लक्ष हो जाने स कार्य होताही है?

उत्तरः—लक्ष और उसका ध्येय दुसरा होनेसे वस्तु दुसरी दीखती है तो लक्षकी पर्यायसे नहिं देखना। मैं ही खुद वस्तु हुं—ऐसे देखनेसे लक्षकी पर्याय गौण हो जाती है, तो उस पर्याय पर वजन नहिं जाता—मूख्यता नहिं आती। मूख्यता त्रिकालीपणाकी उसमें रहती है।

(८१)

बस एकही बात है, की "मैं त्रिकाली हुं" ऐसे जमे रहना चाहीए। पर्याय होने वाली हो—योग्यतानुसार हो जाती है, मैं उसमें नहिं जाता हुं। क्षयोपशम हो, न हो, याद रहवे, नहिं रहवे, लेकीन असंख्य प्रदेशमें प्रदेश प्रदेशमें व्यापक हो जाना चाहीए।

(८२)

प्रश्नः—भगवानकी वाणी बहोत जोरदार होगी?

उत्तरः—वाणीमें क्या जोर होता! अपनमें जोर होवे, तो वाणीमें जोरका आरोप देते है।

(८३)

द्रव्यलींगीको त्रिकाली प्रति उत्साह नहिं आता, उत्साह आता तो "त्रिकाली" हो जाता।

(८४)

कुछ कर नहिं तो गमे नहिं ऐसी आदत (कर्ता बुद्धि) हो गई है, लेकीन कुछ करे तो गमे नहिं ऐसा होना चाहीए।

Ganesh Varni Digambar Jaiṇ Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८५)

[आत्माके लीये] रुचीकी आवश्यकता चाहीए। दरकार होनी चाहीए। (विकल्पोंसे) थकावट होनी चाहीए। तीव्र प्यास लगे तो ढूंढे ही।

(८६)

जहांतक डूबकी अंदरमें (आत्मामें) नहिं मारता, वहांतक प्रयत्न चालू रखना चाहीए।

(८७)

प्रश्नः—रुची बढते बढते वस्तुकी महत्ता बढती जाती है और सुगमता भी ज्यादा भासती है?

उत्तरः—रुची बढती हैं, ऐसे (पर्यायके) लक्षमें भी पर्याय में महत्ता होती है, उसमें (पर्यायमें) मेंपणा दीखता है, तो त्रिकालीमें नहिं जम सकते। ओ तो विकल्पवाळी रुची है। मैं तो परिणाम मात्रसे भिन्न हूं, ऐसा त्रिकालीका अनुभव आना, ओही अभेदकी रुची है।

(८८)

कोई एकान्त वेदान्तमें खेंच जावे नहिं, ईसलीये दोनों बात बताई है। पर्याय दूसरेमें नहिं होती, कार्य तो पर्यायमें ही होता है, ऐसा कहे तो वहां (पर्यायकी रुचीवाले) चोंट जाते है-ऐसा तो है न! ऐसा तो होना चाहीए न! अरे भाई! क्या होना चाहीए? छोड दे सब बातें जाननेकी! मैं तो त्रिकाली ही हूं। उत्पाद-व्यय कुछ मेरे में है ही नहिं।

(८९)

प्रश्नः—गुरुआतवालेको, विचारमें बैठते है, तो मैं ऐसा हूं।-मैं ऐसा हूं ऐसा करते है, तो घंटा-आधा घंटा में थाक लगता है, तो क्यों?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरः—विकल्पमें तो थाक ही लगेने ! मैं ऐसा हूं-ऐसा अनुभव करनमें शांति है।

(९०)

एकही मास्टर की (Master key) है। सब बातोंमें, सब शास्त्रमें, एक ही सार है। त्रिकालीपणामें अपनापन जोड देना है।

(९१)

आनंदका अनुभवमें तो रागसे भी भिन्न चैतन्य गोला छुट्टा एकीला अनुभवमें आता है-उसका आनंदकी क्या बात करें ! ओतो अंदरसे निकलना ही गमे नहिं, बहारमें आते ही भट्ठी भट्ठी लगे।

(९२)

प्रश्नः—पक्का निर्णय बिना, मैं शुद्ध हूं, त्रिकाली हूं, ध्रुव हूं, ऐसे ऐसे अनुभवका अभ्यास करे तो अनुभव हो सकता है क्या ?

उत्तरः—नहिं; पक्का निर्णय नहिं, लेकीन यथार्थ निर्णय कहो। यथार्थ निर्णय होनेके बाद निर्णयमें पक्कापन होता है। फीर अनुभव होता है।

(९३)

प्रश्नः—सामान्यका विचार तो ज्यादा चले नहिं, और विशेषका विचारमें तो निर्विकल्पता होती नहिं ?

उत्तरः—मैं शुद्ध हूं, ऐसा हूं, ऐसा विकल्प करनेकी बात नहिं है। और विचार भी तो एक समयकी पर्यायमें होता है। यहां तो मैं ऐसा ही हूं-ऐसा त्रिकालीमें अपनापन हो कर अनुभवपूर्वक ऐसा परिणमन हो जाना चाहीए। विचार आदि तो पर्यायका स्वभाव होनेसे चलता ही है। लेकीन जोर ध्येय स्वभावकी ओर रहता है, तो परिणती त्रिकालीकी ओर ढल जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(९४)

चौथा गुणस्थानवाला जीव द्रव्यलींग धारते है। फीर भी स्थिरता कम है। और पंचम गुणस्थानवाला अशुभमें विशेष रहता है, फीर भी स्थिरता (चौथावालेसे) विशेष है। क्युं के चौथावाला द्रव्यलींगीको शुभभावमें रस अधिक है-बाह्य उपयोग अधिक है। और पंचमवालाको अशुभभावमें अधिक होते हुए भी अंतरमें ढलन अधिक रहती है।

(९५)

प्रश्नः—चौथा गुणस्थानवालाको वस्तुका अनुभव है। और स्थिरताका प्रयत्न भी करता है। फीर भी अनुभवमें काल क्युं लगता है।

उत्तरः—चारित्रकी पर्यायमें ईतनी अस्थिरता है। पुरुषार्थकी कमी है। पर्यायकी ऐसी योग्यता है। लेकीन दृष्टिमें उसकी गौणता है। वर्तमानमें ही पुराहूं-ईसमें पर्यायकी कमती-बढती गौण है।

(९६)

अज्ञानी पर्यायमें ही अपनापन, संतोष, अधिकता आदि रखते हैं। पर्यायमें उल्लास तो है न! पर्यायमें विशेषता तो है न! यह पर्यायने द्रव्यका महात्म्य तो कीया न! पर्याय अंदरमें तो ढलती है न! ऐसे ऐसे कोई भी प्रकारसे पर्यायमें ही वजन रखते है। लेकीन पर्यायसे हटकर मैं तो त्रिकाली दल जैसा का तैसा हूं। परिणाम मात्र मेरेमें नहिं है। ऐसे ध्रुवपणामें अधिकता नहिं थापते। क्युंकि वेदनमें तो पर्याय आती है। और द्रव्य तो अप्रगट है, तो अप्रगटको तो नहि देखते है। पर्यायमें ही अपनापन रखते है। लेकीन यहां तो कोईभी पर्याय हो, सुख अनंत हो, या ज्ञान अनंत हो, या वीर्य अनंत हो, तो भी मुझे कुछ परवा नहिं। मैं तो सुख स्वरुप ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभावसे हूं, ऐसे ध्रुव स्वभावमें ही अधिकपणेका वेदन करनेका है, और शुद्ध पर्यायोंभी गौण करना है–गौणपणे वेदन करना है। ध्रुव वस्तुमें मैंपणा स्थापन कीये बिना पर्यायसे एकत्व छूट सकता नहिं।

(९७)

यह अपेक्षासे नित्य हूं, यह अपेक्षासे अनित्य हूं। एसे दोनों ही ठीक है–ऐसे (अज्ञानी) कहते है। अरे! मैं नित्य ही हूं–ऐसा जोर देना तो भूल गया। तो क्या रहा? अनादिका जो था वोही रहा!

(९८)

विचार मननसे वस्तु प्राप्त नहिं होती है (अनुभव नहिं होता है) क्युं की ये पर्याय बहीर्मुखी, मनका संगवाली हैं। वस्तु अंतर्मूख ध्रुव है।

(९९)

चैतन्यदलमें असंख्य प्रदेशमें प्रसरजानेसे पर्याय दीखती ही नहिं है। (अर्थात्) ऐसी पर्यायको छोडकर, ऐसी पर्याय करुं, ऐसा नहिं होता ' पर्यायमें साम्यभाव आ गया।

(१००)

प्रश्नः—कीसी जीवके बिना, सामान्यतः सभी जीवको मार्गका क्रमका सेवन करना पड़ता है। (श्रीमद् राजचंद्रजीका बोल) ईसमें क्या कहना है?

उत्तरः—क्या क्रम! (हसते हसते) ओ त. कीसी जीव सीधा अनुभव करके वस्तुको पकड लेता है। और बहुतसा जीवोकी परिणती चंचल होती है। ईसलीये धीरे धीरे शास्त्र आदिमें रुकते रुकते ईधर (अंतरमें) ढल जाते है, तो क्रमका सेवन कहा।

(१०१)

भगवानकी वाणी सुननेमें (सूननेका लक्षमें) अपना नाश होता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। जैसे स्त्रीका विषय है, वैसे यह भी विषय है। (परलक्षी सभी भावों विषयका भाव समान ही है-क्योंकी परमार्थे परलक्ष होनेमें आत्माका गुणका घात ही होता है)

(१०२)

असलमें बात तो यह है, की सूननेसे जो महात्म्य आता है, वो नहिं। मगर अंदरसे सहजरुपसे (स्वका) महात्म्य आना चाहीए। (बाहरमें) तीव्र थकावट हो तो अंदरसे ही आता है।

(१०३)

अपरिणामीमें सदा जोर आना चाहीए। परिणाममें विकल्पसे हटनेका ओर आह्लादरुप अनुभवमें जानेका परिणाम होता है। लेकीन अधिकता ईसमें नहिं। अधिकपणा तो त्रिकाली में ही रहना चाहीए।

(१०४)

श्रवण वांचन आदि तो सब उपर उपर की बात है। अंदरसें सहजरुप (भाव) आना चाहीए।

(१०५)

यहां तो दातार हो जानेकी बात है। यहांसे (दूसरा उपदेश दाता से) लेलूं ऐसी बात ही नहिं। एक दफे लाभ मीला, तो दूसरी दफे भी लाभ मील जायगा, यह प्रत्यक्ष लाभ मील रहा हैन! ऐसे ऐसे करके उसमें ही (अज्ञानी) रुक जाता है। अंदरका दातारकी बात तो रही नाम मात्र, और बहारका दातारकी मूख्यता!

(१०६)

शास्त्रमें बात आवेकी बरफका संयोगसे पाणी ज्यादा शीत होता है-ऐसे अधिक गुणवानका संगमे रहनेसे ज्यादा लाभ होता है। ऐसा सूननेपर-वहां अज्ञानी चोंट जाता है। असंगकी बात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड दी। गुणहीनका संग छोडकर गुणवानका संग कीया, मगर असंगता रह गई!

(१०७)

शास्त्रोमें अनेक तरहका कथन आते है। तो अज्ञानी इसमें गुंचवा जाता है। मगर निश्चयकी बात मूख्य करके निमित्तका ज्ञान करनेका है। ओ भूल जाता है। क्यों की अनादिका संगका अभ्यास हैन! तो एक संग (अशुभ) छोडकर दूसरा (शुभ) संग पकडलेवे।

(१०८)

अनुभवकी बात तो क्या कहेवे! एक दफे बिजलीका करंटकी माफीक अंदरमें उतरजाना चाहीए। जैसे करंटका काल थोडा, फीर भी सारा शरीर झणझणी उठता है। तैसे असंख्य प्रदेशमें आनंद आनंद हो जाता है। पीछे शुभाशुभ विकल्प आते है। मगर अनुभवसे छूटना चाहे नहिं। तो भी छूट जाते है। छूट जावे तो छूटो मगर मैं तो ये (त्रिकाली आत्मा) ही हूं।

(१०९)

शास्त्र सब पढलेवे। लेकीन अनुभव विना उसका भाव ख्यालमें आते नहिं। सब अपेक्षा तो जान लेवे, लेकीन उसमें ही (जानपणामें ही) फस जाते।

(११०)

त्रिकालीका जोर नहिं, तो क्षणिक शुभाशुभ भावमें पुराका पुरा चले जाते। क्षणिक दुःख आया तो त्रिकाली दुःख मानने लगे, क्षणिक सुख आया तो त्रिकाली सुख मानने लगे। और जो त्रिकालीमें अपनापन हुआ तो क्षणिक पर्याय जो योग्यतानुसार होने वाली है वह हो, मैं उसमें नहिं खीसकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१११)

(ज्ञाताद्दष्टाका स्वरुप बताते कहा) निर्विकल्प अनुभव होते ही ज्ञाताद्दष्टा हो सकता है। ऐसे विकल्पसे ही ज्ञाता मानकर-होने वाला था सो हुवा, ऐसे मानकर समाधानमें सुख मानते है, ओ तो (मांस-खानेवाले) मांस खानेमें अघौरी, और भूंड विष्टा खानेमें, पतंगीया दिपकमें सुख मानते है, वैसा ओ सुख है। निर्विकल्प अनुभव बिना धारणामें ठीक माने-सुख माने, ओ तो कल्पनामात्र है। वास्तविक सुख नहिं।

(११२)

पू. गुरुदेवश्रीने प्रसिद्ध ईतना करदीया है! की कोई कमी नहीं है। पूरा पूरा सूक्ष्म खुलासा कीया है।

(११३)

योग्यता हो तो सूनत ही सीधे अंदरमें उतर जाते है। इसलीये तो कहते है की 'ऐसी उनकी काल लब्धि'। तो (अज्ञानी) कहवे, अरे! पुरुषार्थ को उडाड दीया! अरे भाई! पुरुषार्थ इनसे जुदा थोडा है? कोई स्वछंदता कर लेवे, ईसलीये 'पुरुषार्थ करना' ऐसा कहा है। लेकीन त्रिकालीमें अपनापन होवे उसमें पुरुषार्थ तो होता ही है। लेकीन यह (पुरुषार्थकी) पर्याय जीतना मैं नहिं हुं। मैं तो त्रिकाली दल ही हूं।

(११४)

जो निर्विकलपता होती है उसमें तो सारे जगत, देह, विकल्प, उघाड आदि कुछ दीखते ही नहिं। एक पोते ही पोते दीखता है। अंदरमें जावे तो बहारका कुछ दीखे नहिं।

(११५)

अरे भाई! तूं अपने असंख्य प्रदेशमें साराका सारा चैतन्य मूर्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हो, उसमें बैठ रहो न ! उठ कर कहां जाते हो !

(११६)

शास्त्रसे ज्ञान नहिं होता, ऐसा सुने-और " बराबर है " ऐसा कहे। मगर अंदरमें (अभिप्रायमें) तो पोते बहारसे (शास्त्र आदिसे) ज्ञान आता है, ऐसा मानता है। वाणीसे लाभ नहिं ऐसा कहवे मगर मान्यतामें सूननेसे प्रत्यक्ष लाभ होता दिखता है, तो थोडा तो सून लेउ, इसमें नुकशान क्या है ? (अज्ञानमें ऐसा भ्रम रहता है) अरे भैया ! ईसमें नुकशान ही होता है। लाभ नहिं। उपरसे नुकशान कहे और अंदरमें लाभ मान कर प्रवर्ते, ओ कैसी बात ? उसमें अटक जाते है।

(११७)

प्रश्नः—रुचि क्युं नहिं होती है ?

उत्तर—जरुरत दीखे तो अंदर आये विना रहे ही नहिं। सूनते है-(उसमें) प्रसन्नता आदि होते है, लेकीन सुखकी जरुरत हो तो अंदर आते। जरुरत न हो तो वहां (प्रसन्नता आदिमें) ही ठीक माने। लाभ है नुकशान नहिं है न ! (ऐसा भाव रह जाता है)

(११८)

विकल्पकी भूमिकामें भी (जीसको) निर्णय नहिं होता, उसको निर्विकल्प निर्णय होनेका अवकाश ही कहां है !

(११९)

[खुदका परिणाम बताते हुए कहा] ई...त...नी लगनी रहती है की कब मैं एकांतमें बेठुं...एकांतमें बेठनेकी लगन रहती है। फीर भी एकांत नहिं मीले तो बेसे ही अंदर में एकान्त बना लेवे। एकांत नहिं मीले तो ईनके लीये तडपते नहिं (आकुलता करते नहिं)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१२०)

जैनदर्शन ही एक ऐसा है की जो वितराग होनेसे दुसरेको अपने समान बना लेता है, ये उनकी खास विशेषता है। दूसरा मतवाले शिष्यको बहूत कुछ दे देवे, लेकीन पूरा तो नहिं देवे, क्योंकी वो कषायी है।

(१२१)

प्रश्नः—द्रव्यलिंगी ईतना स्पष्ट जान कर क्यों 'त्रिकाली' में अपनापणा नहिं करते ?

उत्तरः—उसको सुखकी जरुरत नहिं है। क्योंकी उसको एक समयकी उघाड पर्याय में संतोष है—सुख लगता है। तो 'त्रिकाली' को क्यों पकडे ?

(१२२)

असलमें तो (मिथ्यात्वमें) तीव्र दुःख लगना चाहीए। जो तीव्र दुःख लगे तो सच्चा सुख बिना संतोष हो नहिं सकता। और दुःखकी वेदना सुखको शोधे बिना रहती ही नहिं।

(१२३)

[खुदके परिणाम बताते हुए कहा] निर्विकल्प आनंदकी तो बात क्या करे ! विकल्पके समयमें भी सुख और शांति तो बढती ही रहती है। फीर भी निर्विकल्प आनंद तो ईससे भी बहोत अधिक दरज्जेका है। ओ आनंदसे छूटनेसे तो इतना दुःख ही दुःख होता है, की जैसे बरफमें पडा हुआ बरफसे छूट कर अग्निमें प्रवेशता, जो दुःख होता है, ऐसे निर्विकल्पमेंसे निकलते होता है।...तो निर्विकल्प-में जानेकी लगन रहती है।

(१२४)

आखिर जीतना भी सुन लो, लेकीन सुख तो यहां से (अंतरमेंसे)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही शुरु होता है। यह थोडा सुन तो लउं, इसमें क्या नुकशान है ? पीछे अंदर मैं जाउंगा, ओ वात ठीक नहिं है। और एक समयकी ज्ञान पर्यायमें विचार कर-करके भी क्या मीलेगा ? त्रिकालीकी तरफ जोर देनेसे ही क्षणिक पर्यायकी एकता छूटकर सूख मिलेगा।

(१२५)

प्रश्नः—वर्तमान ज्ञान-वेदन ख्यालमें आता है, वैसे त्रिकाली सत् ख्यालमें क्यों नहिं आता है ? उघाडमें तो युक्ति आदिसे आता है, लेकीन अंदरसे क्युं नहिं आता है ?

उत्तरः—जो उघाडमें न्यायसे ख्यालमें आया, तो ख्यालवाली ज्ञानपर्याय भी कोई आधार पर खडी हैं, तो ओ आधारवाली वस्तु क्या है ? ऐसे देखकर ओ आधारवाली शक्तिमें ही थंभ जाना-प्रसर जाना, ओ ही सत् स्वभाव है।

(१२६)

ये (चार) गतियोंकी बात तो बहूत स्थूल है, यहां तो सिद्ध गति और सिद्ध पर्यायसे भी अधिकमें (ध्रुवमें) अपनापन करनेकी बात है।

(१२७)

प्रश्नः—पर्यायसे छूटा कैसे होवे ?

उत्तरः—पर्यायसे तो छूटा ही है। त्रिकाली तो पर्यायमें आता ही नहिं। लेकीन पर्यायमें एकता कर रख्खी है, ओ एकता त्रिकालीमें थापनेकी है।

(१२८)

ज्ञानीको तो त्रिकालीमें ही अपनापना होनेसे वांचन, श्रवण, पूजन आदिमें भी अंदरसे वृद्धि होती रहती है।

(१२९)

देवगुरु आदि निमित्तका संसारिक विषयोंकी अपेक्षामे फरक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। क्युंकी संसारिक विषयों तो अपनी तरफ झुकाव करनेका कहते है। और देवादिक निमित्तो अपनी और झुकावका निषेध करके आत्माकी ओर झुकजाव! ऐसा कहते है। ईसलीये देवादिक निमित्तोमें फरक कहनेमें आता है। लेकीन जो जीव अपनी ओर नहिं झुकता है, देवादिककी ओर ही झुके रहते है, उन्होने तो ये संसारिक विषयोंकी तरह ये भी विषय बना लीया। तो कोई फरक नहिं रहा।

(१३०)

जब मुनिओ अपने लीये, शास्त्रमे रमती बुद्धिको व्यभिचार मानते है, तो नीचेवालोंकी तो व्यभिचारी बुद्धि है ही। तो (अज्ञानी) जीव यहां ऐसा लेता है की मुनियो तो अपनेलीये व्यभिचारी माने ओ ठीक है, लेकीन अपन तो थोडी शक्तिवाले है, अपनेको तो शास्त्रादिका अवलंबन ही चाहीए, ऐसे ओथ लेकर वहां संतोष-मानकर अटक जाते है। पहलेमें पहला तो त्रिकालीमें प्रसरजानेका है; ओही सबसे प्रथम करना है।

(१३१)

एक समयकी पर्यायमें ही वेदन तो आता है। शक्तिमें तो वेदन है नहिं। ईसलीये यह वेदन ही प्रसिद्ध होनेसे उसको ही अज्ञानी 'आत्मा' मान लेता है। असलमें तो आत्मा क्षणिक पर्यायमें जाता ही नहि। वैसाका वैसा ही त्रिकाल रहता है। उसीमें अपनापन हुए बिना सुख शांति हो सकती नहिं।

(१३२)

गुरुदेवश्रीके उपदेशमें ईतना खुलासा है की ओ निंवसे धर्म पंचमकालतक टीकेगा, ऐसा दीखता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१३३)

परिणाममें बैठ कर (त्रिकाली) वस्तुको देखनेसे, वस्तु भिन्न दीखती है। ईसलीये परिणामसे भिन्न हीनेके लीये, वस्तुमें बैठकर देखना है, तो वस्तुमें अपनापन (एकत्व) होनेसे पर्यायका कार्य भिन्न दीखने लगेगा, और (ऐसी) भिन्नता दीखनेसे पर्याय नाश होते हूए भी अपनापन (द्रव्यमें) तो त्रिकाल ही रहता है, तो पर्याय नाश होनेसे आकुलता नहिं होगी। और ईधर (त्रिकालीमें) बैठनेसे सुखशांति बढेगी।

(१३४)

असलम तीव्र दुःख (मिथ्यात्वका) होवे तो, सुख मीलता ही है। विकल्पमें इतना दुःख ही दुःख लगे...तब सुखकी ओर जाते है, तो सुख मीलता है।

(१३५)

मुझे तो ये षट् आवश्यक नहिं, लेकीन एकही (अंतर्मुख होनका) आवश्यक है, ओ पढकर ईतना....(बहूत) आनंद हूआ था। ओ मुझे याद है।

(१३६)

पू. गुरुदेवश्रीने कैसा वस्तु-स्वभाव स्पष्ट कर दीया है! ओ तो पका पकाया हलवा है। अपन तो सीधा खाते है, नहिं तो हमारी तो शास्त्र में से नीकालनेकी ईतनी शक्ति नहिं है।

(१३७)

एक समयकी ज्ञान पर्याय स्वतंत्र है। (उसमें) पूर्व पर्याय भी कारण नहिं। उसमें तीनकालके पदार्थ जाननेकी ताकत है, ऐसा सूनकर मुझे तो ऐसी चोंट लगी, की तबसे मेरा पढना कम हो गया! चलोने पर्यायका स्वभाव ही जाननेका है, तो सहज जणीस

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जायगा। (जाननेके लीये) आकुलता क्युं करे ? यहां (अंतरमें) सुख पीओने ! न्याय आदि नक्की करनेमें आकुलता होती है, अपनेको तो सुख चाहीए।

(१३८)

असलमें बात यह है की सबकी सब धारणा (अज्ञानी भी) सची कर लेता है। लेकीन पर्यायमें बैठकर द्रव्यको देखता है। तो द्रव्य जुदाका जुदा पड़ा रहता है। पर्यायमें बैठकर द्रव्यको नहिं देखना है, लेकीन द्रव्यमें बैठकर द्रव्यको देखना है। तो द्रव्यमें अपनापणा प्रसर जाता है (अभेदता होती) है। पर्यायमें बैठनेसे (एकता करनेसे) द्रव्य तो दूर ही पड़ा रहता है।

(१३९)

गुरुदेवश्रीकी सिंह गर्जना ऐसी है की दूसरेको निर्भय बना देती है। और जंगलका सिंहकी गर्जना तो दूसरेको भयवान बनाती है तो ये सिंहमें बहोत फरक है।

(१४०)

थोडा यह तो कर लउं, यह तो जान लउं, सूनतो लउं, ये सब अटकनेका रास्ता है। (अपना) असंख्य प्रदेशमें प्रसरकर पूराका पूरा व्यापक होकर ताणीज रहो न ! सुखशांति बढती जायगी। विकल्पादि तूटते जायगा।

(१४१)

मूख्य–प्यास लगती तो उसको मीटाये बिना चेन पडता ही नहिं। ऐसे जो विकल्पमें दुःख ही दुःख लगे तो सुख शोध ही लेवे। उसके बिना चेन पडे ही नहिं। ऐसा ही स्वभाव है।

(१४२)

प्रश्नः—जो विकल्पमें दुःखही दुःख लगनेका कहा, तो यह तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नास्ति पक्षमें गया?

उत्तरः—नास्ति भी द्रव्यकी अपेक्षासे है। बाकी तो ओ (पर्याय) अंशमें दुःख नीकलकर सुख प्रगटता है, और ऐसा दुःख होवे तब तो द्रव्यकी ओर आवेगा।

(१४३)

प्रश्नः—त्रिकालीमें प्रसरनेमें ज्ञान कारण है की दृष्टि कारण है?

उत्तरः—मूख्य तौरसे तो दृष्टि ही कारण है, फीर ज्ञानको भी कहवें। दोनों साथमें ही है। दृष्टि प्रसर जाती है, तो ज्ञान भी हो जाता है।

प्रश्नः—दृष्टि तो जानती नहिं! ज्ञान ही जानता है?

उत्तरः—ईस अपेक्षासे ज्ञानको भी कारण कहवे। लेकीन यथार्थमें तो ऐसे ग्यारह अंगवालेको ज्ञान तो हो जाता है, दृष्टि नहिं होती। तो यथार्थमें तो दृष्टिको ही कारण कहवें।

(१४४)

निर्विकल्प ध्यानके पहले अनेक प्रकारका चिंतवन घंटो तक चले, फीर भी ओ निर्विकल्पताका कारण नहिं है, ओ तो अटकाव है। निर्विकल्पता तो अंतरमें उग्र अवलंबनसे ही होती है। विचाररुप ध्यान तो अटकाव है—होता है-आ जाता है, लेकीन ओ अवलंबन नहिं है। अवलंबन तो अंदरमें लीया हुआ है। उसमें ही उग्रता होते, निर्विकल्पता होती है। यदि अटकावरुप विचार आदिको कारण माना जाय, तो विचारसे छूट कर अंदर नहिं आसकते। अटकाव माननेपर अंदर आसकते। कम शक्ति से पर्यायमें अनेक तरहका विचार चलता है, उसमें उल्लास भी होना है, लेकीन ओ चिंतवन आदि कारण नहिं, अटकाव ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१४५)

प्रश्नः—परिणाम अंदर जमता नहिं, बहार क्युं दौडते है ?

उत्तरः—वछडेको बांधे नहिं तो बहार चरने लगते है। जो खूंटेमें बांधदेवे तो फीरा करते, मगर वहां से बहार नहिं जा सकते है। ऐसे ध्रुवमें पर्यायको बांध देवे, तो पर्याय ध्रुवमें ही फीरेगी, बहार नहिं जायगी। फीरना तो उसका स्वभाव है, लेकीन ध्रुव खूंटेमें ही फीरेगी। और ख मीलता रहेगा।

(१४६)

अपनेको तो सुख पीनेकी अधिकता रहती है। जाननेकी नहिं। और खरेखर तो विकल्पसे जानते है, सो तो सचा जानना ही नहिं है। अंदरमें अभेदतासे जो सहज जानना होता है, ओ ही सचा ज्ञान है। परसत्ता अवलंबी ज्ञान तो हेय कहा है न ! और शिवभूति मुनि विशेष जानते नहिं थे, फीर भी अंदरमें सुख पीते पीते उनको केवलज्ञान हो ग ।

(१४७)

देव, गुरु, शास्त्र, श्रवण, विचार, वांचन, मनन, उघाड, और एक समयकी पूर्व-उत्तर पर्याय, जो जो साधनरुप कहनेमें आता है, ओ सब (निश्चयसे) बाधकरुप है। ऐसा नहिं माने तबतक तो त्रिकालीमें आ सकते नहिं। और उपर उपरसे बाधकरुप कहें और अंदरमें साधनरुप मानते रहवे, तो वहां ही झुकाव रहा करेगा। त्रिकालीमें आ सकेगा नहिं।

(१४८)

पहले तो यह बात नक्की कर लो की सूननेसे ज्ञान नहिं होता। सामान्यसे (सामान्य स्वभावके आश्रयसे) ज्ञान होगा। फीर सूननेका विकल्प उठे तो भी उसमें खेद होना चाहीए। मैं तो वर्तमानमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही परिपूर्ण हूं—वर्तमानसे ही मुझे कुछ करना नहिं। परिणाममें पुरुषार्थ सहज होता हैं। करु करु ओ तो आकुलता है–बोझा हैं।

(१४९)

यहां तो परिणाम मात्रको व्यवहार कहते हैं। मोक्ष और मोक्ष-मार्ग सब व्यवहार है, मैं तो अक्रिय ध्रुव तत्त्व हूं।

(१५०)

अपना सुख देखा नहिं। ईसलीये कीसके साथ मीलान करें की यह देव-गुरु आश्रित वृत्ति भी दुःख है, ऐसा जाने! ईसलीये (अज्ञानीने) एकान्त दुःखको एकान्त सुख मान लीया है!

(१५१)

वस्तु स्वरुप जैसा है, ऐसा है। फीर अपेक्षा लगा कर ढीला थोडा हो सकता है?

(१५२)

अपने द्रव्यमें एकत्व कीये बिना, रागसे और शरीरसे भिन्नता हो सकती नहिं। भले भिन्न है–भिन्न है, ऐसा कहे। और अपने द्रव्यमें एफत्व होते सहजही भिन्नता हो जाती है। विकल्प उठाना नहिं पड़ता। सहजही भिन्नता रहती है।

(१५३)

प्रश्नः—अधिकगुणीका बहूमान करना की नहिं?

उत्तरः—अभिप्राय तो दूसरेका बहूमान करनेका होवे ही नहिं, और खींचावके कारण बहूमान आजाय, तो उसको दीनता मानना चाहीए। एसका भी खेद होना चाहीए।

(१५४)

देव-गुरु के प्रति जो मचक होती है, ओ भी नपुंसकता है, और अभिप्रायमें मचक होवे तो ये अनंती नपुंसकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१५५)

(शास्त्रमें) मुनिके लीये ऐसा कहा है की दूसरा मुनि बीमार हो तो वैयावृत करना ! ओ...तो विकल्प होवे तो ऐसा होवे इसकी बात है। (अपनमें) एकाग्र हो जाता तो पहला तो ओही कर्तव्य है, विकल्प कर्तव्य नहिं।

(१५६)

अधिक पूण्य, ओ विष्टाका बड़ा ढेर है।

(१५७)

केवलज्ञानकी पर्याय, ओ भी जब उपेक्षणीय है, (दृष्टिका विषय नहिं) तब फीर क्षयोपशम ज्ञानकी तो बात ही क्या ?

(१५८)

कोई भी कथन समजनेके लीये, अगर अभिप्रायको छोडकर अर्थ करने जायगा, तो अर्थ भी गलत होगा।

(१५९)

शुभ रागको कर्तव्य माननेकी तो बात ही क्या ? मेरा तो कोई कर्तव्य ही नहिं, ऐसा पहले पक्का होना चाहीए। (ध्रुवमें कर्तव्य कैसे हो सकता है ? मैं तो ध्रुव तत्व हुं।)

(१६०)

पहले विकल्पात्मकमें तो यह निर्णय करलो, की परिणामकी अपेक्षासे ईधर (अंतरमें) ही जमनेका है। दूसरा कुछ करनेका नहिं है। और यह विकल्पात्मक निर्णयका भी अवलंबन नहिं होना चाहीए। और मैं तो अपरिणामी हूं-परिणाममें जाता ही नहिं। ऐसा अभ्यास होते दृष्टि जम जायगी।

(१६१)

ईधर (स्व द्रव्यमें) दृष्टि जम गई, बस ओ ही मुक्ति है, मुक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करना नहिं है।

(१६२)

दूसरी सब जगहसे तो छूटा, लेकीन ईधर आया तो देव-गुरुको चोंटा, यहांसे जरु होगा, ओ तो ओका ओ ही हुआ, नई दुकान चालू कीया, मात्र निमित्त ही बदला।

(१६३)

चाहे सो जीतनी बार भी बात कहनेमें आवे, लेकीन त्रिकालीकी अधिकता कभी नहिं छूटनी चाहीए, कथन चाहे जैसे आवे, लेकीन ओ बात कायम रखकरके दूसरी सब बात है,-त्रिकालीकी अधिकता कभी नहिं छूटनी चाहीए।

(१६४)

देवकी सन्मुख देखो तो देव यह कहता है, की मैं तूम्हारी सन्मुख नहिं देखता हूं। तूम भी मेरी सन्मुख मत देखो, अपनी सन्मुख देखो!

(१६५)

षट् आवश्यक कहा जाता है। लेकीन वास्तवमें तो ये अनआवश्यक है। (श्रावककी भूमिकामें) विकल्प आता है, तो कीस प्रकारका आता है, ओ बतानेके लीये कहनेमें आता है। वास्तवमें तो उसमें भी खेद और दुःख ही लगता है। स्वभावसुखमें जमते ही विकल्पकी आकुलता भासती है, की ये आवश्यक आदि भी दुःखभाव है, उपादेय कैसे?

(१६६)

शुद्धजीवास्तिकायकी दृष्टि बिना, शास्त्रमें जो कथन आता है, उसकी कीतनी हद तक मर्यादा है, ओ समजमें आता नहिं। और दृष्टि होनेपर ज्ञानमें सहज ही सब बातें समजमें आ जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१६७)

सर्वार्थसिद्धिके देव ३३-३३ सागर तक चिंतन मनन करते है। फीर भी केवलज्ञान नहिं होता, और ईधर अंतरमुहूर्त एकाग्रता होने पर केवलज्ञान हो जाता है। जाननेसे (ज्ञानपणासे) प्रयोजन-सिद्धि नहिं होती, लीनतासे सिद्धि होती है।

(१६८)

जिसकी जो रुची होती है, उसको ओ ही रसकी मूख्यता होती है, तो मरण समय भी उसी रसकी उग्रता हो जाती है।

(१६९)

अशुद्ध पर्याय (अंश)का मुख बहारकी ओर है, और शुद्ध पर्याय (अंश)का मुख अपनी ओर है। दोनोंका मुख ही उलटा है, तो ओ सहज ही भिन्न दीखते है।

(१७०)

यहां तो महाराज सा'बने भूमिका तैयार कर दी है। बस, अब तो थोडासा सुखका बीज बो देना, जीससे महाआनंद होवे।

(१७१)

प्रश्नः—उपयोगको अंदरमें वालनेकी बात है न?

उत्तरः—इसमें भी उपयोगमें (पर्यायमें) अपनापन और अपनी ध्रुव चीजमें पर-पना आता है। उपयोग मेरी ओर आयगा, ऐसा होना चाहीए।

(१७२)

फूल बागमें हो या जंगलमें। उसको कोई सुंघो या न सुंघो! उसकी किंमत तो अपनेसे है। कोई सुंघे तो उसकी किंमत बढ नहिं जाती। वा नहिं सुंघे तो करमाई नहिं जाते। ऐसे कीसी जीव अपनेको जानो या न जानो। उससे अपना मूल्य थोडा ही है? अपना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मूल्य तो अपनेसे ही है। कोई मान सन्मान देवे—न देवे सब धूल ही धूल है। उसमें कुछ नहिं है।

(१७३)

पू. गुरुदेवश्री अपने लीये अनंत तिर्थंकरसे अधिक है। क्योंकी अपना कार्य होनेमें निमित्त हुए–ईसलीये। दूसरा उन्होंने ये बताया की भैया! तूम सिद्ध तो क्या! सिद्धसे भी अधिक हो। अनंत सिद्ध पर्यायें जहांसे सदाय नीकलती रहे, ऐसा तूम हो। ऐसा उत्कृष्ट वाच्य पू. गुरुदेवश्रीने बतलाया।

(१७४)

द्रव्यकी सलामती देखते पर्याय भी सलामत हो जाती है।

(१७५)

प्रश्नः—ज्ञान तो करना चाहीए न ?

उत्तरः—अरे भाई! ज्ञान अपना स्वभाव है की नहिं ? स्वभाव है तो ज्ञान तो होता ही है। 'करना चाहीए' उसमें तो पर्याय पर वजन चला जाता है, और अक्रिय सारा पड़ा रहता है। और मैं वर्तमान में ही अक्रिय हुं। कुछ करना है ही नहिं। ऐसी दृष्टि होते ज्ञान–क्रिया सहज उत्पन्न होती है। जानने आदिका विकल्प भी आता है, लेकीन ईस पर वजन नहिं जाना चाहीए। ये सब गौण रहना चाहीए।

(१७६)

अपनी (कार्य) सीमा परिणाम तक ही है। उससे आगे जा सकते ही नहिं। लड्डू आदि भोग सकते ही नहिं। और जो थोडीसी मचक से राग होता है, तो अपना सहज सुखके आगे, ओ भी विष जैसा लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१७७)

कोई तो धारणा कर रखते है। कोई धारणा करके रटण करते है। लेकीन भाई! धारणा कर करके तेरे कीसीको दीखाना है की मैं जानकार हूं ?

प्रश्नः—लेकीन अपना स्वरुपकी प्राप्ति न होवे, तबतक निर्णयके लीये तो धारणा चाहीए न!

उत्तरः—धारणा सहज होती है। मैं यह धारणा करलूं ओ तो बोझा उठाना है। और धारणाके उपर वजन भी नहिं आना चाहीए। धारणा होनी तो चाहीए न! ऐसा वजन नहिं होना चाहीए। सहज हो!

(१७८)

प्रश्नः—चिंत्वन करना (चाहीए) क्या ?

उत्तरः—चिंत्वन भी भट्ठी लगना चाहीए। ओ भी दुःखभाव लगेंगे तभी वहांसे उठेंगे, नहिं तो वहांसे क्युं खीसके ? मार्गमें आते है तो ठीक है, मगर उसको भी दुःखभाव जानना, ईसमें एकत्व नहिं करना। चिंत्वन भी चिंता है-आकुलता है। चिंत्वन जहांसे उठता है, उस भूमिमें जमे रहो!

(१७९)

(श्रोता):—साक्षीभाव रहना चाहीए।

(सोगानीजी):—अपन तो साक्षीभावमें भी नहिं आते। अपन तो ऐसी भूमि स्थल है जहांसे ऐसा एक साक्षीभाव तो क्या, अनंता साक्षीभाव उठते रहेंगे। एक समयके साक्षीभावमें मैं पुराका पुरा आ जाउं तो मेरा नाश हो जाय। साक्षीभावमें (साक्षीभावके विकल्पमें) भी एकत्व नहिं करना। जहांसे ओ (साक्षीभाव) उठते है, ओ भूमि नक्कर स्थल,-ओ ही मैं हूं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१८०)

वस्तु वर्तमानमें प्रत्यक्ष पडी है। वर्तमानमें ही मोझुद है। एक समयकी पर्यायके पीछे आखी की आखी वस्तु पडी है। लक्ष करे उसही क्षण देखने में आती है।

(१८१)

देव-गुरु-शास्त्र की कदर करते है-किंमत करते है, तो ओ कहते है की तूं तेरी कदर कर!

(१८२)

अपनेसे ही लाभ है, एसा नहिं माने तो दूसरेसे लाभ मानना ही पडे यह नियम है। और अपनेसे ही लाभ है, ऐसा माने तो दूसरासे लाभ माने ऐसा बनेही नहिं-यह भी नियम है।

(१८३)

योग्यता और पात्रता ठीक होवे तो एक ही क्षणमें काम हो जाय ऐसी बात है।

(१८४)

पहले विकल्प उठता है। बादमें समाधान करे की ये स्वतंत्र है...(तो यह यथार्थ नहिं)। विकल्पके साथ ही साथ उसी क्षण उससे भिन्नता होनी चाहीए।

(१८५)

प्रश्नः—धारणा के बिना अनुभव हो सकता है क्या?

उत्तरः—धारणा नहिं होवे और अनुभव हो जाय, यह सवाल ही यहां नहिं। यहां तो कहते है, की धारणा होनेपर भी अनुभव नहिं होता। धारणामें "मैं चैतन्यमूर्ति हुं" ऐसा टांका है, ईसी स्थलपर जम जाय तब अनुभव होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१८६)

मैं ऐसी भूमि हुं, जहांसे क्षण क्षणमें नया-नया फल उत्पन्न होता ही रहता है। जैसे भूमिमें ऋतु ऋतु के अनुसार अनेक फल होता रहता है, ऐसे मैं ऐसी भूमि हुं, जहांसे सुखका फल उत्पन्न होता ही रहता है, मैं अमृतरससे ही भरा हुं। और मैं ऐसी भूमि हुं जहां फलके लीये जलकी भी जरुरत नहिं है, क्योंकि मैं स्वयं ही सूखरुप हुं। दूसरे पदार्थोंकी अपेक्षा ही नहिं।

(१८७)

प्रश्नः—जमजाना भी तो पर्याय ही है न !

उत्तरः—अरे भाई ! आखीर कार्य तो सब परिमाममें ही आयगा। परिणामसे गभराओ मत। परिणाम पर खडे मत रहो ! कार्य तो परिणाममें ही आता है। अपरिणामीमें जमगया तो कार्य तो परिणाम में ही आयगा। और वेदन भी पर्यायका ही होगा। अपरिणामी और परिणाम दो अंश होकर आखी वस्तु है।

(१८८)

अपन तो अपना सुख-धाममें बैठे रहो-जमे रहो। बस यही एक बात कायम रख करके, दूसरीं दूसरी सब बात खतालो !

(१८९)

(अज्ञानी जीवको) ज्ञानका थोडा क्षयोपशम होवे, और थोडा विकास भी होता जावे, तो उसमें ही रुक जाता है। "मैं थोडा समजदार तो हूं-और शांति भी थोडी पहलेसे अपेक्षीत बढ़ती जाती है-तो मैं आगे बढ़ता जाता हूं" ऐसा संतोष मानकर अटक जाता है।

(१९०)

यहां (अंतरमूख) बैठेही, बस ईधर अपना असंख्य प्रदेशमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दृष्टि लगाते, यहांसे सीधा सिद्धलोकमें जायगा।

(१९१)

"वर्तमानमें ही मैं कृतकृत्य हूं" ऐसी अपनी वस्तुमें दृष्टि हुई-तो 'करुं करुं' ऐसी कर्तृत्व बुद्धि छूट गई-बस यहि मुक्ति है।

(१९२)

अपना सुख-धाममें सदाय जमे रहना, बस यही एक बात बाराह अंगका सार है।

(१९३)

दृष्टि खुले बिना, शास्त्रका अर्थ भी ठीक तरहसे खता सकते नहिं। खतावनीमें ईधरकी (आत्माकी) मूख्यता कभी गौण होनी नहिं चाहीए। ईधरकी मूख्यता कायम रखकर ही सब कथनोंकी खतावनी करना चाहीए।

(१९४)

ज्ञानीको क्षणिक विकल्प उठते है, लेकीन पूर्वकी माफीक (विकल्पमें) अनंत जोर नहिं है। विकल्प उठते है, लेकीन पछाड़ खाकर खतम हो जाता है।

(१९५)

सहज सूखका अनुभव (रागकी) साथ साथ वर्तता ही है। ईसलीये ज्ञानी हर्षभावको भी प्रत्यक्ष दुःखरुप जाणते है। लेकीन सहज सुख जिसको नहिं प्रगटा, ओ किसके साथ मीलाकर हर्ष-भावको दुःखरुप मानेंगे ?

(१९६)

जो आनंदमें मस्त है, उसकी मस्तीमें आनंदकी ही बात आती है।

(१९७)

"शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन, स्वयं ज्योति सुख धाम" कैसी सुंदर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बात श्रीमद्‌ने की है ! ऐक लींटीमें सब बात आ गई। बस भाई ! तूं ईतनाही विचार कर।

(१९८)

परिणामका कार्य परिणाम करेगा। तूम ईसकी दरकार छोडो। तूम तो अपना नित्यघरमें ही बैठे रहो ! अपने घर पर (द्रव्य स्वभावमें) बैठे तो सब सहज ही सहज है। परिणामका चश्मा पहना है, तो परिणामरूप ही (आप) भासता है। अपरिणामी नहिं भासता है।

(१९९)

"मैं अधिक हुं" यहीं स्वयंका महात्म्य भाव है। मैं कोई भी भावमें-विकल्पमें खीसकता ही नहिं-तणीजता ही नहिं। वैसाका वैसा और वहांका वहां हर समय रहता हूं। विकल्पके साथ-परिणामके साथ खीसकता ही नहिं। क्या दर्पणका दल क्षणिक आकारसे खीसकता है ? वैसाका वैसा ही रहता है। ऐसे मैं भी वैसाका वैसा सदा रहता हुं।

(२००)

कहां एक समयका भाव और कहां त्रिकाली सामर्थ्य !! त्रिकाली सामर्थ्यके पास एक समयका भावकी क्या शक्ति ?

(२०१)

यह बात समजमें आनेसे 'करुं करुं'का बोजा तो हलका हो जाय। लेकीन ईस त्रिकाली-अपरिणामी भावका अनुभव होना ये खास बात है। यह अनुभव करो !

(२०२)

(चर्चा सुननेवालोंके प्रति) यहां वालेको सबको लगनी तो अच्छी हो गई है। लेकीन यहां की मूख्य बात जो "हमारा लक्ष छोडो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बात छोडी नहिं जाती। (मानते होगे की) तुम ऐसी अच्छी बात बताते हो तो तुमारा लक्ष कैसे छोडे ? तुमारी सन्मुखता कैसे छोडे ? असलमें अपनी सन्मुखता बिना यह बात समजमें आती नहिं है।

(२०३)

अरे भाई ! तुं एक समयकी पर्यायमें नहिं आजाता है। तुं तो अनंती पर्यायोंका पींड है। यदि तुं एक पर्यायमें आ गया तो दूसरी सब पर्याय विधवा हो जायगी।

(२०४)

अज्ञानीको एकीला परिणामका ही वेदन आता है ! परिणामकी साथ आखा अपरिणामी पड़ा है। उसका वेदन नहिं आता। लेकीन अपरिणामीमें दृष्टि जमा कर, उसमें तादात्म्य हो कर, प्रसर कर, अपनापन होते, एकी क्षणमें अपरिणामी और परिणाम दोनोंका एकसाथ अनुभव होता है। एकीला परिणामका वेदन मिथ्यादृष्टिको ही होता है। ज्ञानीको एकसाथ दोनों (द्रव्य और पर्याय)का अनुभव रहता है।

(२०५)

" मैं निष्क्रिय हूं " यह चश्मा तो सदाय लगा ही रखना चाहिए। दूसरा चश्मा लगाते समय भी यह चश्मा तो चालु ही रहना चाहीए। यह बिना तो कुछ दीखेगा नहिं। (यहां ' चश्मा ' शब्द "दृष्टिकोण"के स्थानमें है)।

(२०६)

मैं ऐसा अपरिणामी (ध्रुव) पदार्थ हूं की मुझे सारा तीनलोकका पदार्थ ईकट्ठा हो कर हीला नहिं सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बात श्रीमद्‌ने की है! ऐक लीटीमें सब बात आ गई। बस भाई! तूं ईतनाही विचार कर।

(१९८)

परिणामका कार्य परिणाम करेगा। तूम ईसकी दरकार छोडो। तूम तो अपना नित्यघरमें ही बैठे रहो! अपने घर पर (द्रव्य स्वभावमें) बैठे तो सब सहज ही सहज है। परिणामका चश्मा पहना है, तो परिणामरूप ही (आप) भासता है। अपरिणामी नहिं भासता है।

(१९९)

"मैं अधिक हुं" यहीं स्वयंका महात्म्य भाव है। मैं कोई भी भावमें-विकल्पमें खीसकता ही नहिं-तणीजता ही नहिं। वैसाका वैसा और वहांका वहां हर समय रहता हूं। विकल्पके साथ-परिणामके साथ खीसकता ही नहिं। क्या दर्पणका दल क्षणिक आकारसे खीसकता है? वैसाका वैसा ही रहता है। ऐसे मैं भी वैसाका वैसा सदा रहता हुं।

(२००)

कहां एक समयका भाव और कहां त्रिकाली सामर्थ्य!! त्रिकाली सामर्थ्यके पास एक समयका भावकी क्या शक्ति?

(२०१)

यह बात समजमें आनेसे 'करुं करुं'का बोजा तो हलका हो जाय। लेकीन ईस त्रिकाली-अपरिणामी भावका अनुभव होना ये खास बात है। यह अनुभव करो!

(२०२)

(चर्चा सुननेवालोंके प्रति) यहां वालेको सबको लगनी तो अच्छी हो गई है। लेकीन यहां की मूख्य बात जो "हमारा लक्ष छोडो"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह बात छोडी नहिं जाती। (मानते होगे की) तूम ऐसी अच्छी बात बताते हो तो तुमारा लक्ष कैसे छोडे? तुमारी सन्मुखता कैसे छोडे? असलमें अपनी सन्मुखता बिना यह बात समजमें आती नहिं है।

(२०३)

अरे भाई! तुं एक समयकी पर्यायमें नहिं आजाता है। तुं तो अनंती पर्यायोंका पींड है। यदि तुं एक पर्यायमें आ गया तो दूसरी सब पर्याय विधवा हो जायगी।

(२०४)

अज्ञानीको एकीला परिणामका ही वेदन आता है! परिणामकी साथ आखा अपरिणामी पड़ा है। उसका वेदन नहिं आता। लेकीन अपरिणामीमें दृष्टि जमा कर, उसमें तादात्म्य हो कर, प्रसर कर, अपनापन होते, एकी क्षणमें अपरिणामी और परिणाम दोनोंका एकसाथ अनुभव होता है। एकीला परिणामका वेदन मिथ्यादृष्टिको ही होता है। ज्ञानीको एकसाथ दोनों (द्रव्य और पर्याय)का अनुभव रहता है।

(२०५)

"मैं निष्क्रिय हूं" यह चश्मा तो सदाय लगा ही रखना चाहिए। दूसरा चश्मा लगाते समय भी यह चश्मा तो चालु ही रहना चाहीए। यह बिना तो कुछ दीखेगा नहिं। (यहां 'चश्मा' शब्द "दृष्टिकोण"के स्थानमें है)।

(२०६)

मैं ऐसा अपरिणामी (ध्रुव) पदार्थ हूं की मुझे सारा तीनलोकका पदार्थ ईकठ्ठा हो कर हीला नहिं सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२०७)

साधक-बाधक तो सब पर्यायका ज्ञान करनेके लीये है। और सबलाई (अनंत वीर्यका पिंडरुप)का चश्मा लगाये विना नबलाईका भी (यथार्थ) ज्ञान नहिं होता है। साधकपणा-बाधकपणा तो पर्याय-की बात है। हमें तो साधकपणा-बाधकपणाकी भी दरकार नहिं, क्योंकि बाधकपणा त्रिकालीको नुकशान नहिं कर सकता-साधकपणा त्रिकालीको लाभ नहिं कर सकता। फीर उनकी दरकार क्यों?

(२०८)

यहां अपना (चैतन्य) गोलामें ऐसा लीन हो जाते की, उसका रससे परिणति दूसरी जगह जावे ही नहिं। उसीको वैराग्य कहते है।

(२०९)

यहां अपनी ओर आते ही कर्मका खडखडाट खतम हो जाता है। कर्मधूली उडने लगती है। और पर्यायका वांकापन-टेडापन भी छूट जाता है। और सुखशांति बढता जाता है।

(२१०)

अपेक्षाज्ञान बराबर होना चाहीए। नहिं तो खतावनीमें फेर हो जाता है। किस अपेक्षासे किस बात, कितनी मर्यादा तक कहा है; उसका ख्याल होना चाहीए।

(२११)

निश्चयाभास (होनेका) भय छोड देना चाहीए। निश्चयाभासी जब कहवें की पर्यायमें स्वाभावाविक सुख प्रगटे नहिं। जिसको सुख प्रगटा (अनुभव हुआ) ओ निश्चयाभासी नहिं है।

(२१२)

पर्यायको जहां (अंतरमें) जाना है वो तो निवृत्ति-प्रवृत्ति दोनोंसे रहित है। फीर भी वहां जानेवालेको निवृत्तिका ही विकल्प बीचमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आता है। प्रवृत्तिसे खीसनेका ही भाव आता है। यह नियम है। नियम होने पर भी उस पर वजन नहिं है। ऐसा ही भाव बीचमें आ जाता है।

(२१३)

पंद्रह सालका संबंध तुम कहते हो, लेकीन हमारे तो वर्तमान विकल्प पुरता एकी क्षणका संबंध है। ओ विकल्प छूटा फीर खलास! चक्रवर्ती (सम्यग्दृष्टि)को छनवे हजार राणीयां और वैभव आदि होने पर भी वर्तमान जिस पदार्थ पर लक्ष जाता है, उस ही का भोक्ता कहलाता है। और अभिप्रायमें तो उसी पदार्थका भोक्ता उसी क्षण खतम हो गया है।

(२१४)

'आत्मधर्म' जब मीला, उसमें "एक ही आवश्यक है" ऐसा पढते ही चोंट लगी। अरे! ये आठ द्रव्योंसे पूजा करना! छह आवश्यक! ये सबमें तो बोजा लगता है। और इस एक (निश्चय) आवश्यकमें तो बोजा घट जाता है।

(२१५)

(सोनगढसे दो माईल, एकलीया डेमका एकांत स्थानमें, शांत वातावरणको देख कर कहा) यह स्थान ये बतला रहा है की यदि तुमारे सुख चाहीए तो ये तुमारा साथीओंसे भी दूर हो जाव!

(२१६)

"मैं निरालंबी पदार्थ हूं" ऐसा (निर्णय) आये विना, अभिप्राय में (परका) आलंबन छूटे ही नहिं।

(२१७)

प्रश्नः—श्रद्धाका कार्य श्रद्धा पर ही छोड देना?

उत्तरः—जबतक यथार्थ श्रद्धा तो नहिं हुई, ओर श्रद्धा ओर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओर जगह (पर पदार्थोंमें) भटकती हुई, अपनापन करती है, फीर कहवेंकी श्रद्धाका कार्य श्रद्धापर छोड देता हूं, ऐसा तो बन सके नहिं। पहले श्रद्धा अपना त्रिकाली अस्तित्वमें अभेद हो जावे, फीर तो श्रद्धाका कार्य श्रद्धा पर ही है।

(२१८)

जल्दी (फौरन) मुक्ति चाहीए, तो बस यहां (त्रिकालीमें) ही विराजमान हो जाव !

(२१९)

(कर्ताबुद्धिका निषेधकी अपेक्षासे कहा) ज्ञान करनेकी जरुरत नहिं। मंद-कषाय करनेकी जरुरत नहिं। निर्विकल्पता करनेकी जरुरत नहिं। केवलज्ञान करनेकी जरुरत नहिं। सब सहज होते है। करनेका बोजा नहिं रखना। अपरिणामी पर आया तो सब सहज ही होते है। ज्ञाता-दृष्टा रहूं, यह भी नहिं। ईधर (आत्मामें) आया तो ज्ञाता-दृष्टापणा सहज रहता —रहुं ऐसा नहिं।

(२२०)

(तिर्थंकरके जन्म कल्याणकमें) ईन्द्र नृत्यकर बहारमें लौकिक अपेक्षासे खुशी मनाता हो, लेकीन अंदरमें जो सहज सुख चल रहा है, उसमें ईस हर्षभाव भी दुःखरुप सहजपणे मालूम पड़ता है। और यह सहज-सुख यह भावका सहज निषेध कर रहा हैं। बहारसे तो ईन्द्र भी उस हर्षभावमें खुशी मनाते हो।

(२२१)

प्रश्नः—(हमको आत्मामें) स्थिरता क्युं नहिं होती ?

उत्तरः—क्षणिक परिणाममें अपनापन है। स्थिर तत्वको तो पकडा नहिं है, तो स्थिरता कहांसे आवे ? मैं अपरिणामी सदाय स्थिर ही हुं। ऐसा त्रिकाली स्थिर तत्वमें अपनापन आतेही परि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

णाममें स्थिरता सहज आयगी, स्थिरता बढेगी, और पूर्णता भी होगी। पहले मैं त्रिकाली स्थिर तत्व हुं। ऐसी दृष्टि होनी चाहीए।

(२२२)

जितना भी दव-गुरु-शास्त्रकी ओर लक्ष जाता है, उसमें नुकशान ही है। (बहीर्मूख उपयोग होनेसे) लाभ नही है। यह बात पक्की हो जानी चाहीए।

(२२३)

प्रश्नः—उपयोगको स्वयंकी ओर ढालनेका ही एक कार्य करनेका है न ?

उत्तरः—पर्यायकी अपेक्षासे तो ऐसाही कहा जावे। क्योंकि, उपयोग दुसरी तरफ है। तो ईधर लाओ-ऐसा कहनेमें आता है। असलम तो मैं खुदही उपयोग स्वरुप हुं। उपयोग कहीं गया ही नहिं। ऐसी दृष्टि होते, (पर्याय अपेक्षासे) उपयोग स्व सन्मुख आता ही है।

(२२४)

सुननेके भावमें सुननेवालेको नुकशान है। और सुनानेके भावमें सुनाने वालेको नुकशान है। (बहीर्मूख उपयोग होनेसे) दोनोंको नुकशानीका धंधा है। अपनी अपनी योग्यताके अनुसार दोनोंको नुकशान है।

(२२५)

सारी दुनियाको छोडकर इधर आया (सूननेको आया) तो ईधर थपाट लगाकर कहते है, की अरे भाई ! तूं तेरी ओर जा ! !

(२२६)

आत्मा संबंधी विकल्प हो, की पर संबंधी विकल्प हो, लेकीन विकल्प तो विकल्प ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२२७)

प्रश्नः—वस्तु पकडाती नथी, तो क्यां अटकायत थती हशे? शुं महिमा नहिं आवतो होय?

उत्तरः—एक समयका परिणाममें अपनापन रहता है। बस ओही भूल है। महिमा तो आता है, लेकीन उपर उपरसे। वास्तविक महिमा आजाय तब तो छोडे ही नहिं। वस्तुका आश्रय पकडना चाहीए। ओ नहिं पकडता है।

(२२८)

पर्याय मात्रकीं गौणता करो। अनुभव हुआ, नहिं हुआ-ओ नहिं देखो। "त्रिकाली वस्तु ही मैं हुं" पर्यायमात्रको गौण कर, ईधरका (अंतर स्वरुपका) प्रयास करो। अभिप्रायमें एक दफे सबसे छूट जाना।

(२२९)

जैसे भूंगलीमें पकडा गया शुकको ऐसा लगता है की मैं उलटा हुं। यदि सुलटा होता तो फौरन उड जाता। ऐसे अज्ञानीको ऐसा लगता है की मैं विकारी हुं। ईसलीये आत्माको कैसे प्राप्त कर सकुं! अरे भाई! सुलटा उलटाकी बात ही नहिं। परिणामसे छूटा तो ध्रुव पर ही आयगा। (पर्याय बुद्धि छूटने पर आत्मामें आत्मबुद्धि होगी) भूंगलीको शुक छोडता तो उडही जाता। क्योंकि उडना उसका स्वभाव है। ऐसे परिणामसे खीसकते तो त्रिकाली दलमें ही आयगा।

(२३०)

ध्रुव तत्व पर पांव रखो, तो पर्यायमें सब कार्य सहअ ही होगा।

(२३१)

आचार्य भगवंत तो निरंतर अमृतरसका ही पान करते थे। अमृतरसमें ही मग्न थे। लेकीन अच्छा भोजन करते समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कुटुम्बीजनोंकी याद आती है-ऐसे आचार्यदेवको करुणा आती है की भाई ! तुमारे पास ही आनंदका दरिया पडा है, तुम उसको पीओ-पीओ !

(२३२)

वस्तु साक्षात् मौझुद पडी है। मात्र कल्पना नहिं करना। लेकीन उसरुप हो जाना। तन्मय हो कर असंख्य प्रदेशमें व्याप्त हो जाना। वस्तु साक्षात् है-फीर मात्र कल्पना क्यों करना? उसरुप परिणम जाना।

(२३३)

अपन त्रिकाली-ध्रुव गुरुको गुरु बनाकर जो शुद्ध पर्याय प्रगटी, तो बहारमें उस वाच्यको बतलाने वालाको गुरुका आरोप दीया जाता है।

(२३४)

परिणाममें फेरफार करना मुझ (चैतन्य) खाणका स्वभाव नहिं है। पुरुषार्थकी खाण ही मैं हुं, फीर एक समयका पुरुषार्थमें 'करनेकी' आकुलता क्या?

(२३५)

अपनी अनंत परिणतिको नित्य रहकर भोगते रहो। खंड खंड होकर भोगनेमें तो अपना नाश हो जाता है।

(२३६)

निरालंबी तत्व मैं हूं-ईसकी तो पुरी मुख्यता होनी चाहीए। और (परालंबीपना) दीनताका पुरा पुरा दुःख मालुम होना चाहीए।

(२३७)

यहां (त्रिकालीमें) अपनापन आते, मोक्ष अपने आप हो जाता है। दृष्टि यहां अभेद हुई, तो यही मुक्ति समज लो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२३८)

अपने स्वक्षेत्रमें बैठ गया, तो परिणाम जायगा कहां? परिणामका जोर (परान्मुखि जोर) पंगु हो जावे। बहिर्मुखतामें तो परिणाम परके साथ साथ चला जाता है। दृष्टि यहां (अंतरमें) जमी, तो परिणाममें ज्यादा दूर होनेकी शक्ति नहिं रही।

(२३९)

यथार्थ रुची होवे, तो काल लगे ही नहिं-रात दिन, खाते पीते, सोते उसके ही पीछे पडे।

(२४०)

(विकल्पात्मक) कृत्रिम पुरुषार्थकी तो बात ही क्या ? लेकीन अक्रिय (चिद् बिम्बकी) दृष्टिमें तो सहज पुरुषार्थकी भी गौणता है। क्योंकि ओ भी क्रिया (एक समयकी पर्याय) है। और अक्रिय (स्वरुप) दृष्टिमें क्रिया मात्रकी गौणता है।

(२४१)

सूननेके कालमें भी-'मैं निरालंबी तत्व हूं'-यहांसे ही शुरु करना चाहीए। फीर सूनने करनेका भाव आयगा, लेकीन मूख्यता नहिं होगी।

(२४२)

परिणामको हटा नहिं सकते, परिणाममेंसे एकत्व हटा सकते है।

(२४३)

उपयोग अपनेसे बहार नीकले तो, जमका दूत ही आया-ऐसा देखो! (बहारमें) चाहे भगवान भी भले हो। (उपयोग बहार जावे) उसमें अपना मरण हो रहा है। बहारके पदार्थसे तो अपना कोई संबंध ही नहिं-फीर उपयोगको बहारमें लंबाना क्यों?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२४४)

"कुछ करना नहिं है" हर समय ऐसा भाव रहना...(कर्ताबुद्धि छूटनेसे) ईससे अधिक मुक्ति कौनसी है ?

(२४५)

दूसरेसे अपनी प्रसिद्धि होवे इसमें तो अपनेको पराधीनता आयी। खुद तो लंगडा रहा।

(२४६)

बहारका सत् से-देव, गुरु, शास्त्रसे तुझे लाभ होनेवाला नहिं है। तेरा सत् से ही तुझे लाभ है। बहारका सत् से लाभ होवे तो क्या तूं 'सत्' नहिं है ?

(२४७)

वस्तु और वस्तुमें एकाग्रता-तणाव। बस ये ही दो बात है। एकाग्रता होते होते मुक्ति हो जाती है। (ईसके अलावा) सुनना, तत्त्व चर्चा करना, ये सबका सब विषय सेवन है। (क्योंकि बहिर्मूख-भाव है) अपना विषयको छोड कर ईसको विषय बनाते है, तो अपना विषय पडा रहता है।

(२४८)

सीर्फ बैठक ही बदलना है। परिणाम पर बैठे हो तो वहांसे उठ कर अपरिणामी पर बैठ जाव। बस ईतनी ही बात है।

(२४९)

कचाश तो जब कहा जाय की अकचाश-स्वभावकी दृष्टि हुई हो तब। नहिं तो कचाश कहां है ? एकांत पर सन्मुखता है।

(२५०)

["आत्मप्राप्ति कैसे होवे" इस विषयमें जिज्ञासापूर्वक पूछा हुआ प्रश्नका यह विस्तृत उत्तर है]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रुचीमें खरेखर अपनी जरुरत लगे, तब अपनी वस्तुकी प्राप्ति हुए विना रहवे ही नहिं।...चौविसो घंटो चिंतनमें-वे चिंतनमें एक यही (स्वरुपका घोलन) चलता रहे। जिस विषयकी रुची होती है उस विषय, सेंकडो बाह्य कार्य करते हुए भी, चलता ही रहता है। बहारका उपयोग उपरी उपरी चलता हे-उसमें जागृति नहिं होती। जिस विषयकी रुची है उसमें ही जागृति रहती है। सेंकडो कार्य करते रहने पर भी, ये सबकी गौणता ही रहा करती है। और रुचीका विषय ही सदा मूख्य रहता है।

विकल्पात्मक विचारमें भी, शरिराकार चैतन्यमूर्तिको टांक दो। "मैं तो यही हूं"। सुखकी दुःखकी जो कुछ पर्याय हो उसकी उपेक्षा रखो। "मैं तो यही हूं"। विचार चले, उसकी भी गौणता रखो। "मैं तो वैसाका वैसा ही चैतन्यमूर्ति हूं"। बस यही दृढता करते रहो।

सुनना, शास्त्र पढना आदि सबकी गौणता होनी चाहीए। एकांतका ज्यादा अभ्यास रहना चाहिए। (ताकी स्वरुप-घोलन बढे)।

यह (सम्यक्त्व) प्राप्त नहिं हुआ, तो जीव निगोदमें चले जायगा, ऐसा निगोदका भयसे अपना कार्य करना चाहे (जो यथार्थ नहिं)। लेकीन (अभिप्रायमें) निगोदकी अवस्था हो या सिद्धकी; मेरा कुछ बिगाड़ सुधार नहिं (मैं अवस्थारुप नहिं) ऐसी मैं अचलित वस्तु हूं—ऐसी श्रद्धा जम जाना चाहीए। पर्याय कैसी भी हो उसकी उपेक्षा ही रहनी चाहीए।

पर द्रव्यकी साथ तो कुछ संबंध ही नहिं। ईतना यह बातका तो पक्ष होना चाहीए-बादमें वस्तु (त्रिकाली ध्रुव) और परिणाम (उत्पाद-व्यय) दो बीचका विचारमें ही सब समय लगा देना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौवीसो घंटो बस यही (स्वरुपका घूंटण) चलना चाहीए। प्रवृत्तिभावको गौण करके ईसी एककी ही मूख्यता होनी चाहीए। यही प्रयास निरंतर चलना चाहीए।

❀ ❀ ❀

(२५१)

आत्मा ज्ञान और सुखसे भरा है। फीर अपनेको चाहीए भी क्या ? (लोग) जन्म-मरणसे छूटना चाहते है, लेकीन मैं तो जन्म-मरणसे रहित ध्रुव हूं। उत्पाद-व्यय के साथ भी मैं खीसकता नहिं।

(२५२)

इधरसे (अंतरमेंसे) जो ज्ञान खीलता है-ओ सारा नाटकको (तटस्थ होकर) देखता है।-कैसा कैसा भाव उठता है ! कैसा ठगाते है, कैसा खींचाव (पर द्रव्यप्रति) होता है-ओ सब नाटक ज्ञान देखता रहता है।

(२५३)

इतना इतना खुलासा यहांसे (पू. गुरुदेवश्रीसे) बहार आ चुका है की पंचम आराका अंत तक चलेगा।

(२५४)

(मात्र) विचार करनेसे वस्तुका पत्ता नहिं लगता। (आत्माका अनुभव नहिं होता) वस्तु तो प्रत्यक्ष मोझुद है-बस ईसीमें प्रसर कर बैठ जाना-विराजमान हो जाना।

(२५५)

मैं ही पुरुषार्थकी खान हुं न ! दृष्टिने पुरुषार्थकी खाणका कबजा ले लीया-फीर पर्यायमें पुरुषार्थ, सुख आदि सहज होता ही है।

(२५६)

प्रश्नः—परिणाममेंसे एकत्व छोड देना यही आपका कहना है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरः—बस यही कहना है। परिणाममेंसे एकत्व छोड दो। लेकीन यह एकत्व कैसे छूटे? नित्य स्वभावमें एकत्व करे तब। निश्चय नित्य स्वभावमें दृष्टि जमाकर, परिणाम मात्रसे एकत्व उठा लेना।

(२५७)

प्रश्नः—वृत्ति उठती ही रहती है ओ कैस रुक जाय?

उत्तरः—एक समयकी वृत्तिको उसमें रहने दो। मैं तो त्रिकाली, एक समयकी वृत्तिमें जाता ही नहिं। त्रिकालीमें अपनापन होते ही वृत्ति भी खींचीज जायगी।

(२५८)

सबसे प्रथम अभिप्रायमें, निरालंबीपणा आजाना चाहीए। बीचमें (बादमें) जरासा (परका) आलंबन आजाय, लेकीन उसी समय अभिप्रायमें निषेध है।

(२५९)

ज्ञानकी रागप्रति पीठ होती है। मुख नहिं होता है। ईधर (अंतरमें) मुख होनेसे राग स्वयं छूट जायगा। रागको कम करु-छोडुं-ये तोफान नहिं होता। राग ा कम नहिं करना है। और लंबाना भी नहिं है। स्वभावका बल बढत बढते राग कम होता जाता है। ज्ञानका परिणमन अर्थात् स्थिरता बस यही एक रागका नाशका उपाय है। रागको कम करु यह कोई उपाय नहिं है।

(२६०)

मैं तो ये सब स्वप्न दख रहा हुं।...शरीर शरीरमें है, और मैं मेरेमें हूं। स्वप्नकी माफीक ये सब हो रहा है।

(२६१)

प्रश्नः—सीताजी साधर्मी था—और पत्नि भी था। तो भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रामचंद्रजीने लौकिक जनोंकी मूख्यता करके, वात्सल्य अनुरागको भी गौण कर दीया-यह कैसा ?

उत्तरः—देखो, ईससे यही सिद्ध हुआकी (धर्मीको) वात्सल्य राग ही मूख्य होता है-ऐसा नहिं है। कभी कैसा राग आ जाय ! कभीं क्या (दूसरा) राग आ जाय !

(२६२)

वात्सल्य आदिका, प्रभावना आदिका रागको (सभी प्रकारके रागको) हम तो रोग मानते है, फीर उसको बढाना क्या ?

(२६३)

द्रव्यलींगीको वस्तुका महात्म्य (साधारण) तो आया है। लेकीन वस्तु परोक्ष ही रही है-प्रत्यक्ष नहिं कीया।

(२६४)

आचार्यने दृष्टिका दोष इतना बडा कहा है, की भाई ! सर्पसे काटा तो एक ही दफे मरता है। लेकीन मिथ्यात्वसे काटा अनंत-भवमें रुलता है। इसलीये इस मिथ्यात्वका महान पापसे बचनेके लीये, शादी करनेका कहा-जो मात्र रागका ही (त्रारित्र दोषका) कारण है।

(२६५)

पर्याय (त्रिकाली) द्रव्यसे सर्वथा ही भिन्न है। प्रमाणम अभिन्नता भी कहनेमें आती है, लेकीन प्रमाण निश्चय नयका जुठा करके नहिं कहता है। निश्चयसे तो पर्याय सर्वथा भिन्न है। प्रदेश एक होनेसे प्रमाण उनको अभिन्न कहता है। प्रमाण अभिन्न ही कहता है ऐसा नहिं है। भिन्न-अभिन्न दोनो (प्रमाण) कहता है। लेकीन एकान्त भिन्न है ऐसा जोर दीये बिना पर्यायमेंसें दृष्टि उठेगी नहिं। "अनेकान्त पण सम्यक एकान्त एवा निज पदनी प्राप्ति सिवाई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अन्य हेतुए उपकारी नथी।" ओ सत्य है।

(२६६)

मैं ईतना मजबुत स्थल हुं की एक समयकी पर्यायमें अनंत सूख हो, ज्ञान हो, या अनंती उल्टी पर्यायें हो। मेरेमें उन पर्यायोंसे कुछ भी हीलचाल नहिं होनी-या सुधार बीगाड नहिं होता। ऐसी दृढ मजबुत चीज मैं हुं।

(२६७)

प्रश्नः—परिणाम कैसे सुधरे?

उत्तरः—नित्य अपरिणामी ध्रुव धाममें दृष्टिको बिराजमान करने से परिणाम सुधरने लगेंगे।

(२६८)

आखीर तो एकान्त (अकेला) ही सदा रहना है। तो शुरुसे ही एकान्तका अभ्यास दो-चार-पांच घंटा चाहीए।

(२६९)

"मृत्युका बाजा तावसे छूटता है" ऐसे परिणाम मेरेसे सर्वथा भिन्न है। (ऐसा जोर देनेपर) दृष्टि तब ही परिणामसे छूटती है।

(२७०)

(बाह्य व्यवहारमें) कीसी भी कार्यकी जवाबदारी लेना ओ तो (हमारे लीये) बडा पहाड उपाडना है। (बहोत बोझा लगता है)।

(२७१)

यह जो महाराज साबका योग मीला है-वह परम योग है। क्योंकि परम स्वभावकी प्राप्तिका कारण है! महाराज साब जगतगुरु है। ओ अकेले सिद्धलोकमें नहिं जाते। बहुतसे जीवोंको साथ लेकर जाते। यहां के अधिकांश लोक साथमें चलनेवाले है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२७२)

यह सब (तत्वकी) बात विकल्पात्मक जानलेनेसे शांति नहिं मान लेना। अभेद दृष्टि प्रगट करना।

(२७३)

असलमें आत्मा कैसे प्राप्त होवे–यही एक ध्येय होना चाहीए। दूसरी दूसरी बातोंसे क्या प्रयोजन ?

(२७४)

ईधर (स्वरुपमें) दृष्टि आते ही सुखका स्रोतका स्रोत बहने लगेंगे।

(२७५)

जिस रसकी रुची होती है–उस रसकी जिस निमित्तसे कृतकारीत–अनुमोदनासे पुष्टि मीलती है, उसका संगका भाव आता है। देव, गुरु, शास्त्र शांत रसका निमित्त है। ईस लीये उसका संगका भाव आता है।

(२७६)

निश्चयाभासके निषेधके लीये जब ऐसा कहनेमें आता है कि सूननेका भाव तो गणधरको भी आता है–अध्ययनका भाव तो मुनियोंको भी आता है- आदि कथन आता है। तो अज्ञानीको व्यवहार पक्षकी पुष्टि हो जाती है। और निश्चयाभास हो जानेका डर (भय) लगता है–ईसलीये निश्चय पर जोर दे सकता नहिं। और व्यवहारमें तणीज जाते हैं–रागमें आदरभाव रह जाता है।

(२७७)

मैं ऐसा पदार्थ हूं कि मेरेमें भयका प्रवेश ही नहिं हो सकता ! फीर भय किस विषयका ?

(२७८)

लोग देखे कि यह चक्रवर्ति छह खंडवाला है, और उनकी दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो है अखंड पर।

(२७९)

(अभिप्रायमें) जरासी भूल ओ भी पूरी भूल है। पर्याय ध्यान करनेवाली है और मैं तो ध्यानका विषयभूत वस्तु हुं। पर्याय मेरा ध्यान करती है। मैं ध्यान करनेवाला नहिं हुं। मैं ध्यान करुं यह बातमें और मैं ध्यान करनेवाला नहिं-मैं तो ध्यानका विषय हुं ईस बातमें जरासा फेर लगता है। लेकीन रात दिन जितना बडा फेर है (एकमें पर्याय द्रष्टि रहती है-दूसरेमें द्रव्य द्रष्टि होती है-ईतना बडा फेर है)

(२८०)

प्रश्नः—(ध्यान करते समय) सोहं, सोहम्-शिवोहम् आदि शब्द क्यों बोलनेमें आता है?

उत्तरः—ओ तो सीधा ध्यान जम न सके तब ईस शब्दके द्वारा थोडा कषाय और पतला पडता है, ईसलीये है। (जिसको अंतर पुरुषार्थ बलवान हो, उनको भी ऐसा बोलना पडता है-ऐसा नहिं है)

(२८१)

"शुद्ध बुद्ध चैतन्य घन, स्वयं ज्योति सुख धाम"। उसमें पर्याप्त बात बतला दीया है। फीर जो सब बात आती है, ओ तो परलक्षी ज्ञानकी निर्मलताके लीये सहज हो तो हो!

(२८२)

दृष्टिकी अपेक्षासे चारित्रका अनंतगुण पुरुषार्थ है। लेकीन उसकी भी मुख्यता नहिं। (क्योंकि वह भी पर्याय है) दृष्टिका विषयकी मूख्यतामें उसकी भी गौणता ही रहती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२८३)

बाहरसे तो अपना कोई प्रयोजन ही नहिं। तो बाह्य पदार्थोंसे तो सहज ही उदासीनपणा रहवे ही।

(२८४)

दृष्टि अपनेको प्रभु ही देखती है। कमजोरीसे विकल्प आया तो अपनी निंदा-गर्हा भी होती है। मैं पामर हूं ऐसा भी विकल्प आता है। लेकीन ओ तो क्षण पुरता ही विकल्प है। आ गया तो आ गया... (कीसी ज्ञानीकोतो दृष्टिबल तेज होनेसे, निंदा-गर्हाका विकल्प कम (ओछा) भी आते है।)

(२८५)

जैसे ईन्जकशन हंमेशा लेनेकी जिसको आदत हो गई है। उसको ईन्जकशन लीये बिना चेन पडता नहिं। ऐसे सूनने आदिकी जिसको आदत हो गई है, उसको सुनने (आदि)के बिना चेन नहिं पडता। लेकीन (सूनने आदिके भावमें) तीव्र निषेध आये बिना उससे छूट सकते ही नहिं। (स्वरुप द्रष्टिके बलपर सभी प्रकारके शुभ भाव-पर लक्षी भावका निषेध आये बिना वे शुभ भाव छूटते नहिं।)

(२८६)

प्रश्नः—सम्यक्‌दर्शका विषयभूत आत्मा कैसा है ?

उत्तरः—सम्यक्‌दर्शनका विषयभूत आत्मा, ध्रुव, अभेद, एकरुप, शुद्ध अखंड, कुटस्थ अपरिणामी है।

(२८७)

दृष्टिमें तो अपन प्रभु है-और बहारमें दूसरेको प्रभुमें आगल बढा देखे तो प्रमोद भाव सहज आ जाता है। लेकीन ओ भाव भी क्षण पूरता आ जाता है-ज्यादा लगाड नहिं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२८८)

ईधर (आत्म स्वरुपमें) नहिं आया तो पर्यायका विवेक भी नहिं होता। तो कहना पडे की भाई ! पर्यायका विवेक रखो। ईधर (स्वरुपमें) आया तो पर्यायका विवेक सहज होता है।

(२८९)

एक समयकी पर्यायको छोडकर जो सामान्य वस्तु रह जाती है, ओ दृष्टिका विषय है।

(२९०)

अनादि कालसे भटकते भटकते, जब अपरिणामीमें अपनापन हुआ की "मैं तो सदा मुक्त ही हुं." बस! ओही जीवनकी धन्य पल है।

(२९१)

वितरागके साथ राग करनेका प्रयत्न-मूर्खाई है। वो तेरेको जवाब भी नहिं देगा।

(२९२)

अपना सहज सुखकी पीपासा होनी चाहीए। जीतनी तीव्र पीपासा उतना जल्दी काम होता है।

(२९३)

देव-गुरुसे भी कुछ लेना नहिं है। उनका स्वभाव देखकर-मैं भी इसी जातिका हुं-ऐसा जानने में आता है। लेना-फेना कुछ नहिं है। दूसरेके साथ लेन देनका संबंध ही नहिं है। अशुद्ध पर्याय-का दूसरेकी ओर लक्ष आता है (इतना ही है) लेकीन दूसरासे लेन देनका संबंध नहिं है।

(२९४)

जिस पर्याय जिस कालमें होनेवाली है, तब ही होती है। मुनि दशा भी सहज होती है। पहले भावना होती है लेकीन अभिप्रायकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria,.Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहले प्रधानता करो-पीछे योग्यता प्रधानी हो जाओगे। जो पर्याय जब होनेवाली है-तबही होगी। अपने तो जहां बैठा है वहां कुछ करना-करना नहिं । अपन तो बंध और मुक्ति दोनोंसे रहित है।

(२९५)

दृष्टिका विषयकी हर समय मुख्यता रहनी चाहीए। (दूसरी) चाहे जीतनी बात आवो, लेकीन उसकी (दृष्टिका विषयकी) गौणता नहिं होनी चाहीए।

(२९६)

आखा समयसारमें, छट्ठी गाथामें, सम्यग्दर्शनका खास विषय आगया है। छट्ठी गाथामें सबसे उत्कृष्ट बात आगई है। मैं प्रमत्त भी नहिं अप्रमत्त भी नहिं। कौन पर्याय बाकी रही?

(२९७)

देव, गुरु, शास्त्र तरफका लक्ष और वलणमें भी भट्ठीसा दुःख लगना चाहीए। (ज्ञानीका) बहारमें उत्साह दीखता है, लेकीन अंदरमें भट्ठीसा दुःख लगता है।

(२९८)

विकल्पात्मक भावमें यह निर्णय आया की कुछ करना ही नहिं है, तो ईतना विकल्पात्मक कर्तुत्व छूटनेपर आकुलता इतनी कम होती है-फीर विकल्प रहित (निर्विकल्प) निर्णय होते सर्वथा कर्तुत्व छूटकर वास्तविक शांति होती है।

(२९९)

सुनने आदिका भाव ज्ञानीको-गणधरको भी आता है। तो अपनेको क्यों न आवे? (ऐसी बातोंके अवलंबनसे अज्ञानी जीव) ऐसे ऐसे पराश्रीत भावकी पुष्टि करता है।

(३००)

मृत्युके समय जीवको अपनी रुचीका विषय ही मुख्य होजाता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। दूसरी सब चीजसे रुची टहकर, जीसकी रुची थी वही एक चीज-की मुख्यता हो जाती है। ऐसे जीसको आत्माकी रुची है, उसको मृत्युके समय अपना आत्मा ही मुख्य हो जाता है। उस समय तो सब समेट लेना है। (ईस बात पर कीसी जिज्ञासुने श्रीमद् राज-चंद्रजीका देंहांत समय कहा हुआ शब्द "मैं स्वरुपमें लीन होता हूं" कहा—सूनकर सोगानीजीने आगे कहा कि) ऐसा ही होना है। दूसरेसे कहवे की मुझे सुनावो, तो उसकी योग्यता भी उसी प्रकार की है, तब ही ऐसा विकल्प आता है।

(३०१)

एक (मूल) बात यथार्थ पकडमें आने पर सब बातों यथार्थरुपमें ग्रहण होती हैं।

(३०२)

अपने तो अपना समजना। दूसरा कैसा समजता है, कैसा नहिं, इसका क्या प्रयोजन? दूसरेमें रुकेगा तो अपना काल व्यर्थ चला जायगा।

(३०३)

क्षयोपशममें बैठे हुए, (आत्मा) द्रव्य ऐसा है, एसा है,-ऐसी द्रव्यकी बातें कर रहा है, ओ तो दूर बैठ कर द्रव्यकी बात कर रहा है। (आत्मामें बैठ कर द्रव्यका स्वरुप बताना यथार्थ है)।

(३०४)

जब अंतरदृष्टि जमें, तब ही (वर्तमान पर्याय की) योग्यता का ज्ञान यथार्थ होता है। तब ही (जीस कालकी जैसी) "योग्यता", कहनेका अधिकार है।

(३०५)

(निर्विकल्प दशामें) बिजलीका करंटकी माफीक अतिंद्रिय सुख प्रदेश प्रदेशमें व्यापक होकर प्रसर जाता है।...झंझनाट...! काल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थोडा होनेपर भी क्या ? (काल थोडा होनेसे उसकी महत्ता कम नहिं। निर्विकल्प आत्माका अतिन्द्रिय आनंदकी अनुभवदशाका महात्म्य अचिंत्य, महिमावंत है)।

(३०६)

आत्मा तो गंभीर है। समुद्रकी माफीक अनंत शक्तियां अपनेमें संग्रह कर बैठा है। इसकी दृष्टि होते ज्ञानमें भी गंभीरता और विवेक आजाता ही है।

(३०७)

बहारका संगका निमित्त–नैमित्तिक संबंध भी पर्यायके साथ है। मेरी साथ नहिं ! और जिसको पर्यायमें ही एकत्व बुद्धि है, उसको तो निमित्तके साथ भी एकत्व बुद्धि लंबाती है। ज्ञानीको पर्यायमें एकत्व बुद्धि नहिं है। तो निमित्तके साथ भी एकत्व बुद्धि नहिं है।

(३०८)

संसारमें हर विषयमें प्रयास करते हो तो ईधर (अंतरमें स्वरुपका) प्रयास भी करो न ! इस प्रयासमें तो उत्कृष्ट शुभभाव होता है–जो दूसरी कीसी जगह नहिं होता। यह भी है तो कृत्रिम प्रयास, लेकीन अकृत्रिम प्रयासके पहले ये भी आया बिना नहिं रहता।

(३०९)

नित्य पडखा और अनित्य पडखा, ये दोनों पडखा एक वस्तुका है। अब प्रयोजन सिद्ध करनेका मतलब है, तो यह प्रयोजन नित्य पडखाको मुख्य करनेसे और अनित्य पडखाको गौण करनेसे सिद्ध होता है।

(३१०)

(विकारी) पर्याय परकी ओर तन्मयता करती है लेकीन परकी साथ तन्मय हो सकती नहिं। अंतर्मूहूर्तसे अधिक परकी ओर टीक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकती नहिं। ओर (शुद्ध) परिणाम त्रिकाली स्वभावकी साथ तन्मयता करता है, तो यहां तो तन्मय हो जाता है। और सदाकाल ओ तन्मयता (स्व सन्मुखता) टीकती है।

(३११)

जितनी धगश उग्र, इतना कार्य जल्दी होता है।

(३१२)

प्रश्नः—मुनिने वस्त्रादि नहिं होवाथी दुःख नहिं थतुं होय ?

उत्तरः—मुनिओको दुःख कैसा ? उनको तो अंतरमें आनंदका स्रोत बहता है। बिजलीका करंटकी माफीक आनंद चल रहा है। उनकोतो वस्त्रकी वृत्ति उठना ही दुःख है। और जो शुभवृत्ति उठती है ओ भी भयंकर दुःखरुप लगती है।

(३१३)

मैं तो विकल्पसे शुन्य हूं और मेरा भावोसे मैं भरपुर हूं।

(३१४)

अध्ययन आदिका काफि रहस्य पू. गुरुदेवश्रीसे अपनेको मील गया है। क्रमबद्ध कहां लीखा है, अपने क्या दरकार है ? सिद्धांत बैठ गया और अनुभवमें आ गया। फीर क्या काम ? ऐसे महाराज-साथकी सब बाते अपनेको तैयार मील गई है। जैसे पिताकी कमाई हुई पुंजी वारसेमें बिना प्रयत्न मिल जाय !

(३१५)

प्रश्नः-ज्ञानीको विषयोमें आसक्ति नहिं है, इसका मतलब क्या ?

उत्तर-अन्य मतवाले तो इसको दुसरी तरह कहते है, लेकीन ऐसा नहिं है। यथार्थमें तो ज्ञानीको अपना त्रिकाली स्वभावमें ऐसी आसक्ति हो गइ है कि दूसरा किसी पदार्थमें आसक्ति होती ही नहिं। ईतना स्वभावमें आसक्त है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३१६)

प्रश्नः—पहले तो आलंबन लेना चाहीए न ?

उत्तरः—पहलेसे ही मैं परिपूर्ण हुं, उसको आलंबन क्यां ? ऐसा लेकर, (बाह्य) आलंबनसे नुकशान ही है, ऐसा निषेधपूर्वक थोडा आलंबन आ जाता है। लेकीन अभिप्रायमें आलंबन नहिं होना चाहीए। आलंबनमें पहलेसे ही निषेधभाव होना चाहीए।

(३१७)

मृत्युके समय, 'मुझे सुनावो' ऐसा भाव जब उठता है, तब तो स्वयंकी तैयारी नहिं है। अंदरमें (स्वरूपका घोलन) चल रहा हो, उसको दूसरा सुनावे ऐसा विक प ही नहिं उठता। उसको तो उस समय अधिक बल होवे तो निर्विकल्पता आ जाती है। अगर निर्विकल्पता नहिं आती तो भी स्व की अधिकता तो छूटती ही नहिं।

(३१८)

स्व द्रव्यमें जम जाना, एक ही कर्तव्य है, वो भी परिणामकी अपेक्षासे। मेरी अपेक्षासे, मैं तो कृतकृत्य ही हूं-कुछ कर्तव्य नहिं। मैं तो अनंत वीर्यकी खान हूं।

(३१९)

दूसरे सब पदाथाको तो छोडा और देव-गुरुको चोंटा। अब उससे भी उखड कर ईधर (स्वरूपमें) चोंटो !

(३२०)

मैं तो चैतन्य प्रतिमा हूं। यह प्रतिमा कुछ देती नहिं। उससे उपकार हो सकता नहिं, (उपचारसे) कहनेमें आता है। असलमें तो उनका स्वरूप, ओहो ! वीतरागी शांत मुद्रा-देख कर, बस मैं भी वैसा ही हूं। (ऐसा आतम स्वरूप दीखता है)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३२१)

जैसे वीररसवालेको (लडाई आदिके प्रसंगमें) शरीर छूटनेका डर नहिं। ऐसे शांतरस वालेको सारा जगत प्रतिकुल हो जाय, शरीर छूट जाय, ऐसा प्रसंग आ जाय फीर भी डीगते नहिं।

(३२२)

[कृतकृत्य स्वभावका अनुभवमें, पर्यायमात्रकी कर्तृत्व बुद्धि मीटती है; इसके संदर्भमें कहा] मेरे तो शुद्ध पर्याय भी करना नहिं है, न पुरुषार्थ करना है, न ज्ञान करना है, न श्रद्धा करना है। ओ सब परिणामका कार्य है, और मैं तो अपरिणामी हुं। परिणाममें कभी जाता ही नहिं। तो मैं उसका (परिणामका) क्या करुं? परिणाम ही स्वयं पुरुषार्थ आदि रूप होता है।

(३२३)

सुननेवालोंको तो दीनता है ही, लेकीन दुसरोंको सुनाना चाहते तो ओ (भावमें) भी दीनता है।

(३२४)

प्रश्नः—प्रयास तो करना चाहीए न?

उत्तरः—अरे भाई! कृत्रिम प्रयाससे क्या होगा? उसके पर वजन नहिं आना चाहिए। मैं वर्तमानमें ही निष्क्रिय चैतन्य हुं। वहां (स्वरूपमें) आया तो पर्यायमें सहज प्रयास उठते ही है। मैं तो अनंत पुरुषार्थकी खान हुं न! एक समयका प्रयासमें थोडा आ जाता हूं?

(३२५)

मैं वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूं, तो (स्वरुपमें तो) मुक्तिका प्रयास भी करनेका सवाल नहिं। करना क्या है? परिपूर्णमें मुक्ति करना भी क्या?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३२६)

प्रश्नः—रागको ज्ञानका ज्ञेय तो बनाना न ?

उत्तरः—रागको ज्ञानका ज्ञेय " बनानेको जाते " है, यह दृष्टि ही गलत है। खुदको ज्ञेय बनाया, तो राग उसमें (जुदा) जणीसता ही है। रागको ज्ञेय क्या बनाना है ?

(३२७)

प्रश्नः—स्वपरनी प्रतित करवानुं तो शास्त्रमां आवे छे ने ?

उत्तरः—अरे ! स्वकी प्रतित करो ! परकी प्रतित (पर में नहिं) उसमें आ जायगी। अपनी खुदकी प्रतित करो।

(३२८)

त्रिकालीका पक्ष करो। ऐसा पक्ष करो कि अनंतकालमें कवी आया न हो। वर्तमानका पक्ष छोडो।

(३२९)

प्रश्नः—अनुभवमें आवे तो ईधर (स्वरुपमें) बैठा कहवे न !

उत्तरः—अनुभवकी (पर्यायकी) दरकार छोड दो। स्वाद आना (पर्याय करना) ओ कोई ध्येय थोडा है ? ध्येय (त्रिकाली स्वभाव)का पक्ष करना चाहीए।

(३३०)

प्रश्नः—पक्ष ईधर (स्वरुपमें) आया बिना कैसे करे ?

उत्तरः—अरे भाई ! विकल्पात्मकभावमें (निर्णयमें) तो यह पक्ष करो ! पीछे ईधर (स्वरुपमें) जम जाव।

(३३१)

[स्वरुपकी] ऐसी रुचि होनी चाहीए कि उसके बिना क्षण भी चेन न रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३३२)

प्रश्नः—राग ज्ञेय है कि दुःखरुप है ?

उत्तरः—ईधर (स्वभावमें) आया तो राग ज्ञानमें ज्ञेयरुप जाननेमें आता है, और वेदनमें दुःखरुप लगता है।

(३३३)

राग भी उसी समय पुरता सत् है। उसको खीसेडने जायगा तो तूं खुद खीसक जायगा। उसको उसमें रहने दो। तूम तूमारेमें रहो। ओ स्वयं ही चला जायगा।

(३३४)

मैं तो महाराज सा'वको शुद्ध निष्क्रिय चैतन्य बिम्ब ही देखता हूं। जो विकल्प, वाणी, और शरीरकी क्रियायें हो रही है, उसको महाराज सा'ब नहिं मानता हूं।

(३३५)

मोक्ष होवे-न होवे, उसकी दरकार नहिं। (अतिंद्रिय) सुख चालू हो गया, फीर पर्यायमें मोक्ष होगा ही।

(३३६)

सब शास्त्रोका, बारह अंगका सार तो "मैं" हूं। शेष सब बातें तो जाननेकी है। अपनेको दृष्टिमें लीया, फीर जो ज्ञान उघडता है, ओ सब जान लेता है।

(३३७)

विकल्पमें तीव्र दुःख लगे और विकल्पमें तणीजता नहिं, उसको मचक कहते हैं। (क्योंकि स्वरुपमें निरंतर स्थिर रह सकता नहिं)। मचकमें (रागमें) दुःख ही नहिं लगे, उसको तो मचकमें ही अमचक है अर्थात् मचकमें ही (रागमें ही) आखा आ गया है। उसको मचक कहनेका अधिकार ही नहिं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३३८)

द्रष्टिकी बात मूख्य रखकर सब खतावणी होनी चाहीए। इधर (अंतरमें) द्रष्टि होते जो ज्ञान हूआ, वो (ज्ञान) वस्तु जैसी है, वैसाही जान लेता ह। यह द्दष्टिके विना तो कोई बातमें अधिक खेंचाई जावे, और कोइ बात ढीली कर देवे। और द्दष्टि होते (ज्ञान मध्यस्थ हो जाता है, ईसलीये) जिसकी जितनी जितनी मर्यादा है, ओ अनुसार ही जानना है।

(३३९)

शास्त्रमें सब प्रकारकी, सब पडखेकी बात, न्याय, तर्कादिसे आती है। क्योंकि कोई जीव वेदांतमेंसे आवे, कोई कहांसे आवे, कोईका कैसा अभिप्राय हो। तो सब प्रकारसे खंडनकर यथार्थ बात आनी चाहीए।

(३४०)

सब शास्त्रमें मूल तो अनुभूति पर ही आना ह।

(३४१)

जिसको अनुभूति हुई, ओ जीव अनुभवके बलसे, कोई बात सत्य है; अगर कोई बात अनुभवसे मिलती नहि, सो असत्य है, ऐसा फौरन जान लेता है।

(३४२)

इधर (अंतर) द्दष्टि हूए विना ज्ञान यथार्थ होता नहिं। और द्दष्टि होते, उत्पन्न हूआ ज्ञान, अपना (परमें) कितना अटकाव है, अपनी स्वभावमें कितनी जमवट है, कितना रस है, ओ सब सहज जान लेता है।

(३४३)

अपनेको ज्यादा ज्ञानका लक्ष नहिं है (क्षयोपशम बढ़ानेकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहना नहिं है)। सुख पीनेका भाव रहता है। केवलज्ञान पड़ा है, तो ओ उघड़ते ज्ञान तो सब हो जायगा।

(३४४)

सुख (अतिंन्द्रिय आनंद)का अनुभव हुआ पीछे कीसीको पुछना ही नहि पडता। दूसरा ना कहवे तो कहवे, अपनेको तो प्रत्यक्ष सुख आ रहा है न!

(३४५)

इधर (स्वरुपमें) वर्तमानमें ही मुक्ति पडी है। ओ दृष्टिमें आ गई तो दृष्टिमें तो वर्तमानमें ही मुक्ति हो गई और व्यक्तमें भी अंशे मुक्ति आई। और इसमें (स्वरुपमें) मुक्ति है तो मुक्ति प्रगटेगी ही।

(३४६)

एक भी विकल्प, जो उठता है-चाहे चिंतनका भी विकल्प हो, इसमें ऐसा जानना चाहीए की अपन छूरोंकी बीचमें पडे है। विकल्पमें दुख ही दुःख लगे तबही सुखकी और ढलना होता है।

(३४७)

शक्तिमें सुख भरा पडा है। विकल्पमें दुःख ही दुःख लगे तो सुख प्रगटे बिना रहवे ही नहिं।

(३४८)

स्वाध्यायको तप कहा है। लेकीन अरे भाई! ईधर अपनी ओर चैतन्यमें जम जाना, ओ परम तप है। ओ तो विकल्प है तो उपचारसे उसको तप कह देते ह।

(३४९)

प्रश्नः—ईसको आंगणा तो कहवे न!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरः—यह आंगणा तो है न! आंगणा तो है न! ऐसे वजन देकर जीव अटक जाते है। लेकीन आंगणा घर तो थोडा ही है? घरमें तो उसका अभाव है (सभी प्रकारके विकल्प चैतन्य-घरमें नहिं है)।

(३५०)

जैसे व्यापारी माल देता है और ग्राहक ईसका पेसा देता है; दोनोंको अपना अपना कारण है। एक दूसरेके लीये नहिं करते है। ऐसे सुनानेवाले (ज्ञानी)को अपने कारणसे मचक आती है। और करुणासे उपदेशका विकल्प आता है। और सुननेवालेको अपने कारणसे सुननेका भाव होता है। जैसे वेपारीको दूसरा (ढंगसे) पेसाका बड़ा लाभ हो जाय तो ग्राहकके लीये रुकता नहिं, ऐसे यहां भी सुनानेवालेको विकल्प तूट जाय तो सुननेवालेके लीये रुकते नहिं।

(३५१)

मूल बातमें अपेक्षा लगाता है तो मुझे तो खटकता है (मूलबात पर जोर देते वख्त कोई ईसकी अपेक्षा लगाकर-दूसरी अपेक्षासे ऐसा भी है, ऐसे मूल बात की गौणता हो जानेसे प्रयोजनकी असिद्धि होती है इसलीये खटकता है)। (क्योंकि) उसमें जो तीखाश होती है ओ तूट जाती है। अपेक्षा लगानेसे ढीलापन हो जाता है।

(३५२)

प्रश्नः—अनंत ज्ञानीयोंका एकमत होनेसे ज्ञानीको निःशंकता आ जाती है?

उत्तरः—अनंत ज्ञानीका एकमत होनेसे नहिं, लेकीन अपना सुख पीने से ज्ञानीको निःशंकता आजती है।

(३५३)

खाली निश्चयकी बात करे और अशुभमें रस पडा रहवे तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओ निश्चयाभासी हो जाते है, लेकीन निश्चय स्वभावमें जोर देकर पर्यायकी गौणता होवे ओ निश्चयाभासी कैसे होवे ?

(३५४)

प्रश्नः—भक्ति पूजामें आप कम जाते हो, तो क्या चोवीसों कलाक थोडी निर्विकल्पता रहती है ?

उत्तरः—अरे ! चोवीसों कलाक निर्विकल्पता नहिं रहवे तो उस तरफ ढलनेका प्रयास तो हो सकता है न ! क्या ईसमें शुभ भाव नहिं है ? उसमें तो ज्यादा शुभ भाव है, उसकी तो गीनती नहिं और शरिरादिकी क्रिया होवे उसकी ही गीनती ?

(३५५)

जिस अपेक्षासे वस्तुका जो स्वभाव है, उस अपेक्षासे सो ए सो टका ऐसा ही एकान्त स्वभाव है, फीर उस स्वभावको अपेक्षा लगानेसे ढीला नहिं हो सकता है।

(३५६)

भक्तिका रागांश कभी तीव्र आजाता है-ओ सहज आ जाता हैं। अपने तो सहज प्रकृति है, बलजोरी (हठ) अपनेसे नहिं होती।

(३५७)

परिणामका विवेक तो, जो अनंत सुखी होना चाहते हैं, उनको सहज होना चाहीए।

(३५८)

पुरुषार्थ करु, ज्ञान करु, यह अभिप्राय भी हटा दे। तूं वर्तमानमें ही पुरुषार्थकी खान है। वर्तमान परिणाम परकी दृष्टि जुट्टी है।

(३५९)

निमित्तोंसे तो किंचित् मात्र लाभ नहिं है, लेकीन उघाड ज्ञानसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी कुछ लाभ नहिं है। उघाड ज्ञानमें तुझे हर्ष आता है, तो त्रिकाल स्वभावकी तुझे महत्ता नहिं आई है।

(३६०)

दृष्टि तो अस्थिरता और स्थिरता दोनोंको नहिं कबुलती है।

(३६१)

अपना त्रिकाल स्वभावको पकडे बिना जीवको निश्चय प्रतिती आईगी ही नहिं।

(३६२)

सहज पुरुषार्थमें थकाण नहिं लगेगी। सोने आदिका भावमें भी दुःख लगेगा। निंद्रामें भी थाक लगता है।

(३६३)

त्रिकाल स्वभाव और परिणाम स्वभाव ओ दोनों सर्वथा जुदा ही है। लेकीन सारा द्रव्यकी अपेक्षासे उसको एक कहनेमें आता है।

(३६४)

पर्याय अपेक्षासे शुद्ध भावका मैं कर्ता हूं, लेकीन अशुद्धभावका मैं कर्ता नहिं हूं।

(३६५)

एक समयका परिणाम–बंध, मुक्त,–से वस्तु शुन्य (रहित) है, ऐसा परमात्म प्रकाशमें कहा है।

(३६६)

सूनने करनेका (शुभभाव)में थकाण आनी चाहीए।

प्रश्नः—ओ तो औषधि है, अमृत थोडा है ?

उत्तरः—औषधि कहनमें भी ढीलापना हो जाता है, झहर ही है। श्रीमद् कुंदकुंदाचार्यने कहा ही है न ! विषकुंभ है। एकदफा तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जड़मूलसे कुहाडा मार दो !

(३६७)

प्रश्नः—एक समयका आनंदका अनुभव तो पकडनेमें आता नहिं तो कैसे खबर पडे ?

उत्तरः—अरे भाई ! अनुभव खुदको ख्यालमें आवे नहिं, ऐसा होता ही नहिं। (क्योंकि आनंदका अनुभव कालमें निर्विकल्प उपयोग असंख्य समयका होता है) लेकीन ओ परिणाम हुआ कि नहिं, ऐसे विचार कर करके क्या उसमें संतोष करना है ? अरे सदा ही निर्विकल्प रहे तो भी त्रिकाली स्वभावकी मूख्यतामें, उसकी मूख्यता नहिं करनी है।

(३६८)

दृष्टि ऐसी प्रधान चीज है कि स्वभावमें दृष्टि जमते ही (सब) परिणाम खीलते जाते हैं।

(३६९)

गुरुदेवश्री घोलनसे (निश्चयसे) पर है, लेकीन उनके घोलनमें परसे जो करुणा है, उसमें न्याय आदि निकलते हैं। जैसे पिताका धन पुत्र बिना श्रम भोगता है, ऐसे गुरुदेवश्रीसे मिला हुआ न्याय आदिको अपन बिना श्रम भोगो।

(३७०)

परिणाम से भी उंडा सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्त्व जो है, सो मैं हूं।

(३७१)

बिजलीका करंट लगते ही भय लगता है और उससे हटना चाहते है। लेकीन त्रिकाली स्वभावमें प्रवेश करते ही ऐसा आनंदकी सनसनाटी होती है कि उस आनंदसे क्षण भी हटना नहिं चाहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३७२)

ज्ञानका उघाडमें रस लगता है, तो तत्त्व रसिक जन कहते हैं कि हमको तेरी बोलीमें रस नहिं आता, हमको तेरी बोली काग पक्षी जैसी (अप्रिय) लगती है।

(३७३)

सम्यग्दृष्टि जीव अपनेको सदा त्रिकाली आत्मा हूं ऐसा ही मानते हैं। मैं ध्रुव सिद्ध हूं—जिसमें सिद्ध दशाकी भी गौणता रहती है। सिद्ध दशाका भी समय-समय उत्पाद व्यय होता है, मैं तो सदा ध्रुव हूं।

(३७४)

अपने नापसे दुसरेका नाप करना यही द्रष्टिका स्वभाव है।

(३७५)

मैं त्रिकाल स्वभाव कभी बंधा ही नहिं हूं। फीर मुझे मुक्त कहना ओ तो गाली है। पर्यायको मुक्त कहवे ओ तो ठीक है, क्योंकि ओ बंधी थी, तो मुक्त कहना ठीक है। लेकीन मुझे तो मुक्त कहना भी ठीक नहिं है।

(३७६)

परिणती द्रव्यको कहती है कि मैं भी स्वयं सत् हूं-स्वतंत्र हूं। द्रव्यका आलंबन लेती हुं ओ भी अपेक्षासे कहनेमें आता है, क्योंकि परकी तरफका वलण छूटा है, ईसलीये कहनेमें आता है। असलमें तो परिणती अपना स्व-सत्में ही है।

(३७७)

ईतनी सी बात है-जो उपयोग परमें झुजता है, उसको स्वमें झुकानेका है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३७८)

बात यह है कि जितना तीव्र दुःख (विकारी) पर्यायमें लगे ईतना ही शीघ्रतासे मार्ग प्राप्त होवे, कम दुःख लगे तो देरी लगे।

(३७९)

ध्रुव गुफाकी अंदर चले जाओ। वहां आनंद और सुखका निधान भरा है। उसको नित्य भोगो।

(३८०)

पुरुषार्थ तो चारित्रमें है, दृष्टिमें क्या पुरुषार्थ?

प्रश्नः—क्या दृष्टिमें पुरुषार्थ नहिं है?

उत्तरः—दृष्टिमें पुरुषार्थ तो है, लेकीन चारित्रकी अपेक्षासे बहुत कम पुरुषार्थ है, चारित्रमें तो बडा पुरुषार्थ है।

(३८१)

[बिमारी की व्याख्या ऐसी कही] उपयोग बहारमें ही बहारमें घूमता रहता है, बस, यही बिमारी है, इसको मीटानी है।

(३८२)

निवृत्त स्वरूपकी ओर जाना है तो बहारमें भी निवृत्तिका ही लक्ष जाता है।

(३८३)

निवृत्तिमें एकान्तमें आचार्योंका शास्त्र पढे तो उसमेंसे बहोत बातें निकलती है। उसमें तो बहोत भरा है। आचार्योंके जो शब्द है न! ओ आनंदका बुंद बुंद है। एक एक शब्दमें आनंदका बुंद-बुंद भरा है। आनंदका बुंद बुंद टपकता है, तो रस आता है।

(३८४)

मेरी तो ऐसी आदत पड गई है कि बहारमें चाहे जैसा खड-बडाट हो, लेकीन मेरे तो इधर (अंतरमें घोलन) चलता है न! तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उधरका लक्ष ही नहिं। ओ खदबदाट पसंद तो होता ही नहिं।

(३८५)

मुझे तो एकांत के लीये समय नहिं मीले तो चेन ही नहिं पड़ता।

(३८६)

प्रश्नः—घरवालानी बधी जातनी प्रतिकुलता होवाथी आपणुं काम केम करवुं ?

उत्तर:—अपनी अंदरमें बैठ कर अपना काम करो। ओ अपना काम अंदरमें बैठ कर करनेमें न घरवालो जाने न बहारवालो जाने। अपन क्या करते हैं और कहां है ओ बी कोई नहिं जानेंगे-ऐसे अंदरमें अपना काम हो सकता है।

(३८७)

प्रश्नः—समजण न होवे तो ?

उत्तर:—अरे तीव्र धगश होगी तो समजण भी आ जायगी।

(३८८)

देव आदि और स्त्री आदि सब एक अशुद्धताका ही निमित्त है। और शुद्धताका निमित्त तो एक 'आप' ही है।

(३८९)

अपन तो, जिस भावसे तिर्थंकर गोत्र बंधता है, ओ भाव भी नपुंसकता है,-ऐसे लेते हैं।

(३९०)

अपने यहां तो पक्की कच्ची भूमिकाकी बात ही नहिं है। जो भूमिका (आश्रय स्थान) प्रथम है, सो ही अंतमें है। अर्थात् अपन तो ऐसी भूमिका लेते हैं, जो सदाय टीकती है-त्रिकाल है।

(३९१)

त्रिकालीमें एकत्व होते राग ऐसे भिन्न दीखता है कि जैसे दूसरी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चीज प्रत्यक्ष भिन्न दीखती है, ऐसा ही राग प्रत्यक्ष जुदा ही दीखता है।

(३९२)

भगवानकी भक्ति अर्थ गुणानुवाद। शास्त्र स्वाध्यायमें तो इससे भी अधिक भक्ति है।

(३९३)

विकल्पमें दुःख ही दुःख लगना चाहीए। न्याय, युक्तिसे तो माने कि ये विकल्प शांतिको रोकते है-अनुभूतिको रोकते है, तो दुःखरुप है, लेकीन अनुभवमें दुःख लगे, तो दुःखसे हटकर सुखकी ओर जावे ही।

(३९४)

बंधन रहित स्वभावके लीये वांचन, मनन, घूंटण करुं तो पक्कडमें आवे ओ बात ही नहिं। ओ तो मैं त्रिकाली ही हूं-ऐसे वर्तमानमें ही उसमें थंभ जाव!

(३९५)

परमशुद्ध निश्चयनयसे आत्मा बंधनका और मुक्तिका कर्ता ही नहिं। तो विकल्पका जौर मोक्षका कतृत्व खतम हो जाता है। और त्रिकलीमें जमे रहते हैं, तो पर्याय भी ईधर (त्रिकालीमें) सहज ही आयगी।

(३९६)

त्रिकाली शक्तिमें अपनापन होते ही (दूसरा) सब आलंबन उखड जाते है।

(३९७)

...चर्चा-वार्ता होती है तो स्पष्टता होती हैं।

प्रश्नः—फीर भी आप चर्चा आदिका निषेध क्यों करते हो?

उत्तरः—निषेध तो हर क्षणे पेर पेर पर करना ही चाहीए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईश्वर (स्वरुपमें) ढलता जाता है तो निषेध होता जाता है।

(३९८)

प्रश्नः—आपकी बातमें क्रम आता ही नहिं: एकदम अक्रमकी बात करते है?

उत्तरः—क्रम क्रम क्या? अक्रम (स्वभाव)को पकडना तो क्रम (शुद्धता–आदि) स्वयं होता है।

(३९९)

प्रश्नः—ये सब ख्यालमें आते हुए भी अंदर क्यों जम सकते नहिं?

उत्तरः—अंदरसे ही खरेखर वांचन, विचार आदि (सभी विकल्प) में दुःख ही दुःख लगना चाहीए (संतुष्टपणा नहिं होना चाहीए)। तो उधरसे छूट कर अंदरमें गये बिना रह सकते ही नहिं। युक्ति आदिसे दुःख समजा, ओ तो सहज दुःख कहां लगा? अंदरसे तीव्र दुःख सहज लगे, तो उधरसे थकाण होनेसे, वहां रुक सकते नहिं, तो स्वरुपमें आना होता ही है।

(४००)

[त्रिकालीमें] ढलन तो निरंतर होता ही है, और (एकांतमें) विचार कालमें विशेष होता है; लेकीन विचार तो अटकाव ही है। ओ (विचार आदि) विशेष ढलनका कारण नहिं है। अशुभ प्रवृत्तिमें अंदरमें ढलन चलता, और वृद्धि पामता है, विचारकालमें विशेष वृद्धि पामता है, लेकीन ओ (विचार आदि) विशेष वृद्धिका कारण नहिं है, ओ तो अटकाव ही है। इसलीये विचारमें अधिकता नहिं होती। त्रिकालीमें ढलन होनेसे पर्याय मात्रको अपने तो गौण कर दीया है। ध्रुव दल ही अधिक है।

(४०१)

दुःख है तो सही, मगर उस दुःखसे कोन बचावेगा? खुद ही शरण है—ऐसा ही पू. गुरुदेवश्री कहते है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४०२)

मुक्त शुद्ध पर्यायसे, द्रव्यको मुक्त शुद्ध बताना ओ तो कलंक है। स्त्रीसे पुरुषकी पीछान कराना ओ पुरुषकी हीनता है।

(४०३)

खुदसे च्युत होना ही सबसे बडा पाप है।

(४०४)

व्यवहारसे जो जो साधन कहनेमें आता है, वह सब (निश्चयसे) एकांते बाधक है।

(४०५)

(मुनिको) विकल्प अंश क्षण पुरता आता है तो कहते है कि आकाश आदिसे भी गुरु महान है, गुरुकी महानतामें आकाश तो राईके दानेके समान है। तो ऐसा सुनकर (व्यवहारके पक्षवाला जीव) वहां चोंट जाता है, कि ईतना महान है तो मैं विनयादिमें बराबर रहुं, नहिं तो निश्चयाभासी हो जाउंगा। लेकिन भाई! निश्चय गुरु तो अपना आत्मा है! ओ पडा रहा!!

(४०६)

दृष्टिका नशा चडजावे तो, अंतरमें ही वारंवार वलण होवे, बहारमें गमे नहिं।

(४०७)

प्रश्नः—तो क्या नशाकी माफक दृष्टिका स्वरूप है? कुछ देखती नहिं?

उत्तरः—हां, दृष्टिका नशा ऐसा ही है। कुछ देखती ही नहिं। अपनी (स्वरूपकी) ओर ही दौडती है। ईसलीये तो कहते हैं कि सम्यग्द्रष्टिको बहारमें, चर्चा आदिमें भी रुकना नहिं गमे; अंदर ही अंदर जाना चाहते है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४०८)

शास्त्रमें आता है कि मुनिको रोग आदि होनेपर वैयावृत करनी चाहीए। अरे भाई! ओ तो उस कालमें सहज विकल्पमें खडा हो उसकी बात है। मेरे ऐसे करना—करना चाहीए, ऐसी प्रथमसे दृष्टि रखे, तब तो आश्रवकी भावना हुई।

(४०९)

अलग अलग कालमें क्षणिक शुभ विकल्प योग्यतानुसार होनेवाले हो जाते है।

प्रश्नः—भूमिकानुसार ऐसा विकल्प होता है-ऐसा नहिं लेकर, होनेवाले होते है-ऐसा क्यों लेते हो?

उत्तरः—भूमिकानुसार ऐसा विकल्प होता है-ऐसा लेनेमें उसकी दृष्टि ओ परिणाम करनेमें चोंट जाती है और होनेवाले योग्यतानुसार होते है-ईसमें परिणाम करने पर दृष्टि नहिं रहती, लेकीन अपरिणामी पर दृष्टिका जोर रहता है।

(४१०)

असलमें तीव्र रुची होवे तो त्रिकाली दलमें ही जम जावे। इधर उधरकी जचे ही नहिं। व्यवहारका विकल्पमें रुके ही नहिं। योग्यता पर छोड दे-वहां जोर नहिं रहे। दृष्टिका विषयमें ही जोर रहवें।

(४११)

सुनने करनेका आदि भावमें जो पूण्य होता है, सो भी मध्यम प्रकारका पूण्य है और ईधर स्व सन्मुखका प्रयास चलता है, उसमें उत्कृष्ट पूण्य होता है।

(४१२)

(रागादिका) वेदनमें दुःख लगे, सह न सके तो अवेदन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभावको पकडे बिना रहवे ही नहिं।

(४१३)

सुननेकी रुचि तो सबकी (चर्चा सूनने वालोंको लक्षमें लेकर) ठीक है, लेकीन उससे अनंतगुणी रुचि अंदरकी होनी चाहीए।

(४१४)

प्रश्नः—सुख तो अंदरमें है, फीर वृत्ति बहारमें क्यों दोडती है?

उत्तरः—सुख अंदरमें लगा ही नहिं। ओ तो नाम निक्षेपसे ख्यालमें आया है कि सुख यहां है, असलमें तो नहिं।

(४१५)

प्रश्नः—अब तो (समज हुई पीछे) प्रयोग करनेका रहता है?

उत्तरः—फीर भी यही बात आ जाती है। प्रयोग ही मैं नहिं हूं, तो करना क्या? (प्रयोग) पर्यायमें हो जाता है।

(४१६)

असलमें तो बलवान वस्तुका बल आना चाहीए।

(४१७)

विकल्प दुःखरुप लगना, ओ भी नास्ति है। अस्तिमें तो मैं सुखसे भरपुर हूं—सुखकी खान हूं।

(४१८)

(चर्चा सुननेवालोंके प्रति) सबको लगनी तो अच्छी है लेकीन यथार्थ लगनी लगे तो हर समय यही (स्वरुपका घूंटण) चलता रहे, कितना भी समय होवे तो मालूम ही नहिं पडे। रुचिका स्वरुप ही ऐसा है कि जहां लगे वहां काल दीखे ही नहिं।

(४१९)

प्रश्नः—परिणतिको अंदर कैसे वालना?

उत्तरः—परिणती 'वालना' और 'नहिं वालना'—ओ मैं नहिं हूं-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऐसी दृष्टि होते परिणती वल जाती है।

(४२०)

"किसीके भी प्रति अनहद प्रेम होवे तो खुदको ही भूल जावे"।

(४२१)

"बात सूनते ही चोंट लगनी—ओ एक पात्रता है"।

(४२२)

बोलनेमें खुदका अभिप्राय आये बिना रहता ही नहिं। दूसरेकी बात कहने जावे, लेकीन अपना रस साथमें आ जाता है।

(४२३)

(अज्ञानीकी) धारणा तो बंध तेजुरी माफीक है। धारणा जवाब नहिं देती है। प्रसंग आने पर दुःख तो वेद ही लेते है, फीर थोडी देर पीछे स्मरण करके समाधान लेते हैं। धारणा में क्या है? अनुभव वालेकी तो तेजुरी खुल्ली हो गई है।

(४२४)

"पक्ष करना" कहनेमें आता है, तो फीर जीव पक्षमें बैठ जाता है। अरे भैया! (प्रक्षांति क्रांत होनेवालेको) पक्ष तो हो जाता है। (उसको) स्वभाव रुचता है तो स्वभावका पक्ष हो ही जाता है। लेकीन पक्ष करने तक ही प्रयोजन थोडा है?

(४२५)

प्रश्नः—चिंतन पहले तो होता है न?

उत्तरः—अरे भाई! पहले पीछेकी बात ही नहिं है। मैं ही पहला हूं–यहांसे लो। चिंतन हो, लेकीन "पहले" कहनेसे तो उस पर वजन आता है। चिंतन आदिसे आगे बढ़ता जाता है–ऐसा कहनेमें आता है, क्योंकि पहले लक्ष यथार्थ हो गया है। तो ईसका चिंतन चलता है। (लेकीन) ईसका (चिंतन आदिका) भी निषेध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करते करते आगे बढ़ता है।

(४२६)

खुदसे ही काम होगा, यह तो पहले पक्का हो जाना चाहीए। खुदका बल आये बिना तो कोई आधार ही नहि।

(४२७)

"मैं वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूं" सुनते ही, कुछ करना-कराना है ही नहिं-ऐसा उल्लास तो प्रथमसे ही आना चाहीए। फीर उसीकी पूर्तिके लीये प्रयास करना।

(४२८)

"पहले मैं सब समजलुं (धारण करलु), पीछे प्रयास करुंगा" ऐसे तो कार्य होगा ही नहिं। (अंतर) प्रयास तो सुनते ही चालु हो जाना चाहीए। फीर थोडी रुकावट आवे तो, ईसको दूर करनेके लीये सुनने समजनेका भाव आता है, लेकीन "मैं वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूं" वहां चोंट रखकर ही सब प्रयास होना चाहीए। वहांसे तो छूटना ही नहिं चाहीए।

(४२९)

केवलज्ञानसे अपनेको लाभ होने वाला नहिं, और शुभाशुभ भावोंसे अपनेको नुकसान होनेवाला नहिं-ऐसा मैं तत्व हूं। (ध्रुव तत्व उत्पाद व्ययसे निरपेक्ष है-ऐसी दृष्टिकी बात है) जैसे मेरुसे माथा फोडे लेकीन मेरु हीलता नहिं है-ऐसे परिणाम मेरेसे टकराते है, फीर भी परिणामसे अपन हीलनेवाला नहिं।

(४३०)

परिणाममें बैठे हो, तो द्रव्यमें बैठ जाना! परिणाम तो कम्प रहा है। द्रव्य निष्कम्प है। कम्पता हूआ परिणामका आश्रयसे कम्पता ही रहोगे। निष्कम्प द्रव्यके आश्रयसे निष्कम्पता होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४३१)

संग करनेका भाव आवे तब भी, नहि संग करना है-यह भाव तो कायम (मूख्य) रखकर ही संगका भाव होना चाहीए।

(४३२)

अपनेको भावाकार (परिणामरुप) नहि बनावो, लेकीन भावोंको अपने आकार (रुप) बनावो !

(४३३)

एक समयकी पर्यायमें अपनापन करके ढीलाढच रहनेसे तो कर्म-वर्गणाएं घूस जाती है, और त्रिकाली-नक्कर स्वभावमें अपनापन आते ही, तणाव होते ही, कर्मादि भागने लगते है।

(४३४)

प्रश्नः—सामान्य पडखेको ही जुदा पाडनेका है न ?

उत्तरः—ऐसा कहनेमें आता है। सामान्य पडखा जुदा ही पडा है। लेकीन परिणाममें एकत्व कर रखा है, ईसलीये अलग पाडनेका कहनेमें आता है। असलमें तो जुदा ही पडा है।

(४३५)

(मुझे) द्रव्यका बहोत पक्ष हो गया है, ईसलीये कथनमें द्रव्यसे (द्रव्यकी प्रधानतासे) ही सब बात आती है।

(४३६)

(वर्तमानमें) दुःख लगे तो प्रयास कर करके सुखको ढूंढ लेता है, लेकीन जो धारणामें ही संतुष्ट हो जाता है, तो दुःख नहिं लगता, तो ईधर (अंतरमें) ढूंढता ही नहिं।

(४३७)

इधरकी (त्रिकालीकी) दृष्टि होते ही, मुक्ति चालू हो जाती है। चालू हो जाती है क्या ? मुक्ति ही हो गई।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४३८)

असलमें द्रव्यका पक्का पक्ष आजाना चाहिए। पर्यायका अनादिका पक्ष छूट जाना चाहिए।

(४३९)

प्रश्नः—अंदरमें तो कुछ दिखता नहिं और स्थिरता होती नहिं; ईसलीये सूननेका भाव रहता है, क्या करे?

उत्तरः—इसमें तो व्यवहार श्रद्धा भी नहिं आई। सुननेका अभिप्राय ही नहिं होना चाहिए (सुननेका राग होना और अभिप्राय होना–दोनोंमें बहूत फरक है)। सुनते ही ईधरका (अंतर्मूखपणाका) प्रयास चालू हो जाना चाहिए।

(४४०)

(भेद बुद्धिसे) एक एक पडखेसे जानने जाते हैं, तो अखंड वस्तु जाननेमें रह जाती है।

(४४१)

उपयोग बहारमें जाता है तो अपना अनुभवमें अंतराय आती है।

(४४२)

दृष्टि वस्तुका आलंबन लेती है क्या! ओ तो आखी चीजको ग्रास कर जाती है। आखी की आखी चीजमें व्याप्त हो जाती है। मालिक बन जाती हैं, मालिक कहनेमें भी भेद आ जाता है। उस चीजरुप ही स्वयं है।

(४४३)

वेदांत नहिं हो जावे ईसलीये जरासी पर्यायको बताते है तो (अज्ञानी) वहां चोंट जाता है।

(४४४)

पर्यायमें अपनापन ओ ही असलमें बौधमति है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४४५)

सहज सुख (दूसरा) सबका सहज ही निषेध करता है।

(४४६)

एक आदमीने कहा कि मुझे तो ज्ञानमार्ग कठीन लगता है, भक्ति-मार्ग अच्छा लगता है। अरे भैया! एक ही चीजमें (स्वरुपमें) रस आना ओ ही भक्ति है। भक्तिका रागका अनुभव तो अमृतको छोड कर कीचडका अनुभव है। अपनी चीजमें स्थिर हो कर ठहर जाना ओ ही यथार्थ भक्ति है।

(४४७)

रुची तो ईसका नाम कहवे कि जिस विषयकी रुची होवे उसके बिना क्षण भी चला सके नहिं। पतंगीया दिपकको देखते ही चोंट जाते हैं–विचार नहिं करते। ऐसे विचार–विचार करते रहनेसे क्या? वस्तुको ही चोंट जाव! आखाका आखामें व्याप्त हो कर ग्रासी लो!

(४४८)

(उघाड पर जिसकी दृष्टि है, उसको) क्षयोपशम बढता जाता है, तो साथ साथ अभिमान भी बढ़ता जाता है।

(४४९)

मूंहमें पानीके साथ कचरा आते ही खदबदाट हो कर मुंहमेंसे नीकाल दीया जाता है। ऐसे रागका वेदन ओ तो कचरा है। ज्ञानी उसको अपना मानते ही नहिं। ज्ञानीको किसी भी क्षण रागमें अपनापन आता ही नहिं।

(४५०)

ज्ञानीको राग बोझारुप लगता है। भारी चीजके उपर हलकी चीज होती तो बोझा नहिं लगता, लेकीन हलकी चीज पर तो भारी चीजका बोझा लगे ही। ऐसे ज्ञानीको राग बोझारुप लगता है–

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

खटकता है-खुंचता है।

(४५१)

विचार और धारणामें वस्तुको पकडनेका सामर्थ्य ही नहिं। अज्ञानी वस्तुको नहिं पकडते है। विचारमें तो वस्तु परोक्ष और दूर रह जाती है।

(४५२)

प्रश्न:—प्रतिकुल संयोगमें दु:ख लगता है, विकारीभावमें दु:ख नहिं लगता है?

उत्तर:—यह तो बहोत स्थूलता है। विकारीभाव हुआ ओ ही प्रतिकुल संयोग है-ओ ही दुःख है। उसका दु:ख लगना चाहीए।

(४५३)

आत्माका एक एक प्रदेशमें अनंत अनंत सुख भरा है। ऐसे असंख्य प्रदेश सुखसे ही भरपुर है। चाहे जीतना सुख पी लो। कभी खुटेगा ही नहिं। सदाय सुख पीते ही रहो, फीर भी कमी नहीं होती।

(४५४)

शोचते रहनेसे तो जागृति नहिं होती। ग्रहण करनेसे ही जागृति होती है। शोचनेमें तो वस्तु परोक्ष रहती है और ग्रहण करनेमें वस्तु प्रत्यक्ष होती है। सुनते रहनेसे और शोचते रहनेसे तो वस्तुकी प्राप्ति नहिं होती। ग्रहण करनेका ही अभ्यास शुरु होना चाहीए।

(४५५)

वस्तु तो शुद्ध-भक्तिका (परिणामका भी) निषेध करती है (अर्थात् वस्तु शुद्ध पर्यायसे भी निरपेक्ष है)। शुद्ध-भक्ति व्यवहार-भक्तिका निषेध करती है। व्यवहार भक्ति अन्य सब पदार्थोंका निषेध करती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४५६)

रुची अपने विषयमें बाधक पदार्थोंको फट फट हटा देती है। उसमें रुक जाती नहिं। (सीधा) अपना विषयको ही ग्रहण कर लेती है।

(४५७)

जिसको जिसकी प्राप्ति करनी है, उस प्राप्तिका विषयमें उसको सूक्ष्मता आजाती है। (अर्थात्) प्रयोजनके विषयमें बुद्धि अधिक सूक्ष्म हो जाती है।

(४५८)

प्रश्नः—नजरमें तो पर पदार्थ आते है–स्व वस्तु नजरमें आती नहिं है, तो क्या करना ?

उत्तरः—जिस क्षेत्रमें नजरका परिणमन हो रहा है, उसी आखाका आखा क्षेत्रमें वस्तु पडी है। नजर जहांसे उठती है, ओ ही वस्तु है, तो नजर जहांसे उठती है–वहां ही वस्तुको ढुंढलो।

(४५९)

प्रश्नः—उपयोग स्व सन्मुख होता है, तभी जो (परसे) भिन्नता भासती है–ऐसी (भिन्नता) विकल्पके कालमें भासती है ?

उत्तरः–विकल्पके कालमें भी प्रत्यक्ष भिन्नताका अनुभव है। और उपयोग को मूख्य क्यों करते हो ? "मैं तो ध्रुव तत्व हूं" ईसकी मूख्यता करनी चाहीए। श्रद्धा-ज्ञान, विकल्पके कालमें धारणाकी माफीक, खाली पडा ही नहिं है–लेकीन परिणमनरुप है।

(४६०)

वस्तुको ग्रहण करना, पकडना, सन्मुख वळना, ये सब कथनमें आता है। असलमें तो त्रिकाली वस्तुमें अहंपणा आ जाना, उसको ग्रहण कीया, पकडा, सन्मुख हुआ, आश्रय लीया-ऐसा कहते है। असलमें परिणाम भी सत् है, उसको अन्यका आलंबन नहिं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४६१)

हरक्षण मृत्युके लीये तो तैयार ही रहना। कभी भी हो-और कैसी भी वेदना हो। सातमी नरक जैसी वेदना हो। फीरभी क्या?

(४६२)

विकल्पात्मक निर्णय छूटकर, स्व-आश्रित ज्ञान उघडता है। जो ज्ञान सुखको देता है-ओही ज्ञान है।

(४६३)

व्यवहार, व्यवहारकी अपेक्षासे सत्य ही है।

(४६४)

जिस चीजको पकडनी है, उसको पहले पूरी समज लेना चाहीए।

(४६५)

पर सन्मुख उपयोग होता है-ओ आत्माका उपयोग ही नहिं है, अणउपयोग है। आत्माका उपयोग तो परमें जाता ही नहिं-और परमें जावे ओ उपयोग ही नहिं।

(४६६)

ध्रुव तत्वको समजने के लीये पर्यायके सिवा कोई दूसरा उपाय ही नहिं-ईसलीये पर्यायसे ही सब बात कहनेमें (समजानेमें) आती है।

(४६७)

(एक समयका) अनंत आनंदका वेदन आवे ओ भी मैं (त्रिकाली तत्व) नहिं हूं। क्योंकि वेदनका मेरेमें (त्रिकालीमें) अभाव है। ईतना वेदनमें मैं आजाउं तो मेरा नाश हो जाय। (एक समयकी पूर्ण पर्यायसे भी में अधिक हूं-ऐसा भाव है)।

(४६८)

विकल्प उठे तो ऐसा कहवे कि, हे गुरु! आप मेरा सर्वस्व है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(लेकीन) उसी समय अभिप्राय तो कहता है कि, मुझे तुमारी जरुरत नहिं। मेरा सर्वस्व मेरी पास है। ईतना विश्वास ओर (स्वरुपका) उल्लास तो जरुर आ जाना चाहीए-कि (मेरा कार्यके लीये) मेरे देव-गुरुकी भी जरुरत नहिं-सुनने करनेकी भी जरुरत नहिं। मेरा कार्य मेरेसे ही होगा।

(४६९)

दूसरेमें लाभ बुद्धि है, तब तो उसमें जुडनेकी तीव्र वृत्ति ही नियमसे रहती है।

(४७०)

दृष्टि तो हर समय अपनेको पूर्ण ही देखती है। मुनि भी ऐसा कहवे की हम तो पामर है-ओ तो अपनी खीली हुई परिणतिका पूर्ण (स्वरुप) के साथ मुकाबला करते अपनी पामरता लगती है-ईस अपेक्षासे कहते है। दृष्टि तो साधक-बाधकपणा ही स्विकारती नहिं।

(४७१)

पर्याय नई घडनी नहिं है। ईधर (अंतर) दृष्टि होते, (शक्तिरुप) पडी है सो प्रगट हो जाती है।

(४७२)

(अज्ञानीका) परलक्षी उपयोगमें (ज्ञानमें) रागको भिन्न जाननेकी ताकत ही नहिं। परलक्षी उपयोग तो अचेतनही गीननेमें आता है।

(४७३)

पहले तो असली (निरपेक्ष) बात नक्की करलो। फीर अपेक्षित बातोंको खतालो। एक ओर पर द्रव्यका चिंतन रागका कारण बतावें, दूसरी ओर केवलीका द्रव्य-गुण-पर्यायका चिंतन, मोह-क्षयका कारण बतावें-तो पर द्रव्यका चिंतन रागका कारण-ओ तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिद्धांत है। और मोह क्षयका कारण तो निमित्तकी अपेक्षासे कहा। ऐसे सब जगह निरपेक्ष बात निकालकर-फीर अपेक्षित बात समज लेना।

(४७४)

मृत्यु कब आनेवाला है ओतो निश्चय (जाननेमें) नहिं। और आनेवाला है ओ तो निश्चय ही है। ईसलीये हर क्षण तैयार ही रहना। शरीरके टूकडे टूकडे हो जाय, रोम रोम पर धगधगती सूये लगादी जाय, फीरभी अपने ध्रुव तत्वमें ईसका प्रवेशही कहां है?

(४७५)

पहलेसे शरीरसे भिन्नताका अभ्यास जिसने कीया है-ओ ही मरण समय टीक सकते है। क्योंकि मरण समय तो जिसकी रुचि होती है, ओही मूख्य हो जाता है। अनादिसे देहकी एकताका अभ्यास है-तो पहलेसे जिसने भिन्नताका अभ्यास कीया है-ओही टीक सकेगा। मरण समय, उत्कृष्ट पात्र होवे, जिसकी एकाद भवमें मुक्ति होनेवाली हो, ओही निर्विकल्प समाधि रख सकते हैं। उससे नीचे वालोंको, विकल्पपूर्वक ईसी तत्वकी दृढताका चिंतन चलतां है। इससे नीचेवालोंको देव, गुरु, शास्त्रकी भक्तिका विकल्प आता है। साधकको तो, आकरी वेदना आदि हो, कुछ भी न चले तो भी, ध्रुव तत्त्वकी अधिकता तो छूटे ही नहिं।

(४७६)

अपनेसे अपनी पात्रता मालूम हो जाती है। दूसरा कहवे, न कहवे इससे मतलब नहिं है। द्रव्य स्वतंत्र है न! ईसको परकी अपेक्षा ही नहिं है।

(४७७)

प्रश्नः—आंशिक शुद्धताका ज्ञानीका ध्येय नहिं है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उत्तरः—आंशिक शुद्धता क्या? पूर्ण शुद्धताका (एक समयकी भेदरुप अवस्थाका) भी ज्ञानीको ध्यान नहिं है। मैं तो त्रिकाल शुद्ध ही हूं।

(४७८)

आचार्यदेवने नियमसारमें कहा कि भाई! केवज्ञानादि (क्षायिक) पर्याय भी पर द्रव्य है, पर भाव है, हेय है, तब तुम क्षयोपशम ज्ञानमें तो रुको ही मत!

(४७९)

जहांतक परिणामका लक्ष रहता है वहां तक मैं पुरुषार्थ करुं, अंतरमें वलुं—ऐसे कतृत्वका बोझा रहा ही करता है। ईसलीये कहना है कि भाई! तुं परिणाम मात्रका लक्ष छोड! विकल्प निर्विकल्प सब पर्यायोंका लक्ष छोड! अनुभव हुआ, नहिं हुआ,—ओ नहिं देख!

(४८०)

मिथ्यात्व हो या सम्यक्त्व हो—ओ देखो ही मत! "मैं तो ध्रुव-तत्त्व हूं" यहां आते ही मिथ्यात्व पर्याय भी निश्चय-नियमसे चली ही जायगी। दृष्टिके निर्णयमें पूर्ण शुद्धि भरी हुई है।

(४८१)

यह ध्रुवतत्त्व किसीको नमता ही नहिं। खुदकी सिद्ध पर्यायको भी नमता नहिं।

(४८२)

मुनिके पास कोई शास्त्र होवे, और दूसरा कोई ओ शास्त्र मांगे, तो मुनि फौरन दे देते है, क्योंकि खुद ही तो ओ पराश्रयभाव छोडना चाहते है, तो दूसरा मांगे तो सहज दे देते हैं।

(४८३)

भगवानका रागवाली भक्तिका ज्ञानीको प्रेम होता है, लेकिन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ईधरकी (आत्माकी) भक्तिमें जैसा प्रेम है—ऐसा वहां नहिं होता।

(४८४)

(स्वयंके बारेमें)...मैं तो विकल्पोसे एकदम थक गया था, तो उपरसे एकदम नीचे पटके, ऐसे पर्यायसे छूटकर......(जोरपूर्वक चेष्टासे) अंदरमें उतर गया।

(४८५)

(शुरु शुरुमें) (धार्मिक) पुस्तकोंका बहुत पठन था, हजारों पुस्तके पढली थी, मगर दृष्टि नहिं मीली थी। पू० गुरुदेवसे दृष्टि मीली। पीछे पुस्तक पढनेका रस कम हो गया। (अंगत)

(४८६)

जैसे संयोगकी ईच्छावालेको, ईच्छाके अनुसार संयोगका मीलना पूण्यका उदय तो है, लेकीन उसमें (भोगनेमें) वह पापकी पुष्टि करता है। ऐसे देव, गुरु, शास्त्र मील जाना, ओ पूण्यका उदय तो है, लेकीन उनके प्रतिका भावमें (शुभभावमें) मग्नता (एकता-बुद्धि) होनी, ओ मिथ्यात्वका पापकी ही पुष्टि है।

(४८७)

(अंगत) रात्रिमें निंद सहज कम हो जाती है, क्योंकि आराम तो सचा स्वरुपमें ही है, तो उस तरफकी एकाग्रतामें निंद तो सहज कम हो जाती है। जिसको सारा दिन ईधर-उधरका विकल्पोंका थाक बहूत होता है, उसको आरामके लीये विशेष निंद आती है। लेकीन जिसको ईधर-उधर करनेका कतृत्व ही तूट गया है, तो थांक नहिं है, तो निंद भी कम होती है। जैसे मुनिओंको अंतरकी जागृतिके कारण, विकल्पका थकान नहिं है तो निंद भी कम है। मुझे तो (सोते वक्त) पहला दो घंटा निंद नहिं आवे, फीर थोडी निंद आजावे, तो जागते ही ऐसा लगे कि क्या निंद आगई थी!!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फीर निंद उड जाती है और यही (स्वरुपका घोलन) चलता रहवे।

(४८८)

जैसे उधरके पंडितोंको लगता है कि हम सब जानते हैं, ऐसे वांचनकार हो जावे और उघाड हो जावे तो उसमें (लोग) अटक जाते हैं की हम समजते हैं, तो ओ उघाड रुकनेका साधन हो जाता है। पंडितोंका संसार–शास्त्र, कहा है न!

(४८९)

असलमें सुनने आदिका रस कम हो जाना चाहीए। ओ कम कब होगा कि जब अंदरका रस बढ़ता जावे। तब उधरमें रस कम होता जावे, तो शुरुसे ही उधरमें जोर नहिं आना चाहीए।

(४९०)

दूसरोंके लीये अमुक प्रवृत्ति करना–ओ तो बोझा हो गया। यहां तो सहजकी आदत है। दूसरा अपने लीये चाहे जैसा अभिप्राय बांध लेवे।

(४९१)

प्रश्नः—आ बधी वात साची, पण विकल्प तूटतो नथी ?

उत्तरः—विकल्पसे क्युं डरते हो! ईसको भी इसकी सत्तामें रहने दो। और तूम तुमारी त्रिकाली सत्तामें रहो। विकल्पको तोडने करने जाओगे तो तुमारी ध्रुव सत्ताका तो (श्रद्धामें) नाश होगा। फीरभी ये विकल्प तो नहिं तूटेंगे।

(४९२)

सागरों तक बारह अंगका अभ्यास करते है, लेकीन यह परलक्षी ज्ञानमें तो नुकशान ही नुकशान है। जो उपयोग बहारमें जावे तो दुःख होवे ही। स्व उपयोगमें ही सुख है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४९३)

पर्यायको स्व सन्मुख करुं-अंतरमें वालूं-अंतरमें ढलूं-ऐसे ऐसे (पर्यायका कर्तापणाकी) सूक्ष्म भ्रांति जीवको रह जाती है। पर्यायका मूख बदलना है, ईस अपेक्षासे यह बात सच है, लेकीन ध्रुवपर बेठते ही ओ (स्वसन्मुखपणा) सहज होता है।

(४९४)

जैसा भी परिणाम हो, लेकीन अपन उसका गुलाम क्यों? (एक समयका परिणामसे मैं निरपेक्ष ध्रुव तत्व हूं।)

(४९५)

स्वछंदसे डरो मत। अबतक (स्वरूपका अभानमें) स्वछंद ही चलता आया है। अब तो "सहज स्वछंद (स्वमें प्रवृत्तिरुप) दशा" प्रगट करो! विवेक अपने आप आजायगा।

(४९६)

प्रश्नः—ध्रुव तत्वका महात्म्य विशेष है की ध्रुवको पकडनेवाली पर्यायका?

उत्तरः—अपनी अपनी अपेक्षासे दोनोंका महात्म्य है। असलमें तो ध्रुवतत्वका ही महात्म्य है। पर्यायका महात्म्य आनेसे जीव पर्यायमें बैठ जाता है।

प्रश्नः—ध्रुवः तत्व तो अभवीमें भी है, लेकीन पकडा नहिं तो क्या लाभ?

उत्तरः—अरे भाई! भवी-अभवी दोनों अपन नहिं। अपन तो ध्रुव तत्व है-जिसमें इन दोनोंका अभाव है।

(४९७)

रुचि अपना कार्यमें बाधा नहिं आने देती। रुचि संयोगको और विकल्पोंको गीनती नहिं है। (स्वरुपकी) रुचि होवे तो हर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समय यहींका यही (स्वरुपका ही) चिंतन चलता रहवे।

(अंगत) दूसरेको लगेकी मैं देख रहा हूं, लेकीन (घरमें) चोरी कर जाय तो भी मुझे मालूम न पडे, मेरे कपडे कीतने है, घरमें चीज वस्तु है या नहिं, कुछ मुझे मालूम नहिं। (व्यवहारमें इतना लक्ष कम हो गया था।)

(४९८)

रुचि होवे तो प्रवृत्तिमें भी अपना कार्यमें विघ्न नहिं आता। दूसरेसे तो कुछ लेना नहिं है, और (स्वयं) सुखका तो धाम है। तो उपयोग रहित चक्षुकी माफीक प्रवृत्तिमें दीखे, और उपयोग तो ईधर (अंतरमें) काम करता होवे।

(४९९)

(ज्ञानीको) भक्ति आदि का शुभभाव आवे तब वहारमें तो उल्लासमें दीखे, लेकीन उसी क्षण अभिप्राय निषेध करता है।

(५००)

प्रश्न :—अशुभमें तो दुःख लगता है, लेकीन शुभमें दुःख नहिं लगता है?

उत्तर :—शुभको ठीक माना है, इसलीये दुःख नहिं लगे। पहले अशुभमें ठीक माना था, तो वहां दुःख नहिं लगता था। ईधर (आत्मामें) आवे तो ईधरका सुखका अनुभवमें शुभ अशुभ दोनों ही दुःखरुप दीखते है। माखी जैसे फटकडी पर बैठते ही फट उठ जाती है, सक्कर एर बैठी हो तो पांख तूट जावे तो भी उठना नहिं चाहती, ऐसे यहां भी समज लेना।

(५०१)

जिसको अपना सुख चाहीए उसको, जिसको अपना सुख प्रगटा है उसके पास जानेका भाव आता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५०२)

शास्त्र ईंधरसे (आत्मामेंसे) नीकलते है, तो ईंधरसे नीकली सब बातें शास्त्रसे मील जाती है। शास्त्र देखकर ईंधरका मीलान नहिं करना, लेकीन ईंधरसे नीकली बात शास्त्रसे मीला लेना।

(५०३)

निर्विकल्पता पर वजन नहिं देना (पर्याय पर वजन नहिं देना)। यह मेरेसे (ध्रुवपदसे) थोडी बडी है!

(५०४)

सिद्ध जीवोंसे संसारी जीवों अनंतगुणे है, फीर भी सिद्ध जीवों संसारी जीवोंको अपनी ओर खींचते है। संसारी जीवों सिद्ध जिवोंको अपनी ओर खींच सकते नहिं, ईसमें ही सिद्ध जीवों की विजय सिद्ध हो गई।

(५०५)

पुरुषार्थ के धाममें पुरुषार्थ जम गया—वही पुरुषार्थ है।

(५०६)

प्रश्न :—आत्मा तो दीखता नहिं, तो प्रत्यक्ष कैसे होवे?

उत्तर :—परिणाम तो दीखता है न? तो परिणाम जिसमेंसे आता है, उस चीजका पहले अनुमान कीया जाता है, फीर प्रत्यक्ष (वेदनसे) करना।

(५०७)

इसकी तो जरुरत है न! उसकी तो जरुरत है न! (ऐसा भाव अज्ञानीको रहता) है अरे भैया! पहले में अजरुरीयातवाला हुं—ओ तो निर्णय करो!

(५०८)

पर्याय तक ही अपना कार्य सिमित है। पर पदार्थसे तो कुछ संबंध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है ही नहिं, ऐसा निश्चित हो गया, फीर तो अपनेमें ही शोध चालू रहेगी।

(५०९)

महाराजसा'बने दुष्कालमें सुकाल कर दीया है। यह क्या कम महत्वकी बात है ? ईसकालमें जहां ऐसी बात सुननेको नहिं मीलती है वहां धोधमार वर्षा कर दी है।

(५१०)

प्रश्नः—हमे सम्यक्दर्शन हूआ या नहिं–यह कैसे मालुम होवे ?

उत्तरः—यह प्रश्न बतलाता है कि तुम्हें सम्यग्दर्शन नहिं हूआ। तब ही ऐसी शंका होती है। परने माना तो सम्यग्दर्शन-ऐसा नहिं है।

(५११)

मैं कृतकृत्य चैतन्यधाम हूं। विकार मुझे छूआ ही नहिं। मैं ध्रुव धाम हूं–ऐसा अपना अहंपणा आना चाहीए।

(५१२)

मेरा स्वभाव ज्ञान, दर्शन आदिसे लबालब भरा हुआ है, ईसमें नया कुछ करना नहिं है— कुछ बढ़ाना भी नहिं है।

(५१३)

पूज्य गुरुदेवश्रीने जो उपदेशद्वारा बतलाया, सो ही कार्य मैंने कीया है। जगतमें मुझे मान या यश मीले यह मुझे पसंद नहिं।

(५१४)

परिणामोंके चक्रमें माथा दीया तो हंमेशा माथा फूटता रहेगा।

(५१५)

(भवभ्रमणसे) थक गये हो तो (स्वरुपमें) बैठ जाओ, नहिं थके हो तो चले जाओ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५१६)

बंध तथा मुक्तिमें भेद नहिं (दोनों एक समयका परिणाम है)। द्रव्यको मुक्त हुआ कहना कलंक है। तत्त्वरसिक पुरुष आसन्न भव्य, विज्ञानघनके रसिले पुरुष, बंध–मोक्षका भेद नहिं देखते।

(५१७)

प्रश्नः—गुरुदेवश्रीकी बात भी अच्छी लगती है और बाहरकी अनुकुलता भी अच्छी लगती है, तथा गुरुदेव फरमाते है कि एक म्यानमें दो तलवार नहिं रह सकती ?

उत्तरः—एक शुभ है, एक अशुभ है। दोनों जगहसे हटकर, तीसरी (शुभाशुभ रहित) जगह आजाओ।

(५१८)

व्यवहारनय अभूतार्थ कहा गया है, जिसका संक्षेप यह है कि परिणाम मात्र अभूतार्थ है।

(५१९)

अज्ञानी उत्पाद–व्ययके साथ चला जाता है। ज्ञानीने नित्यमें (स्वभावमें) अपना अस्तित्व स्थापा है, तो उत्पाद व्ययके साथ चला नहिं जाता, (उत्पाद–व्ययको) जान लेता है।

(५२०)

(द्रव्यका) शुद्ध पर्यायकी साथ व्याप्य–व्यापक संबंध पुरे द्रव्यके क्षेत्रके हिसाबसे है (सामान्य विशेषरूप नहिं हो जाता है)।

(५२१)

पहले तो धारणा बराबर होनी चाहिए। लेकीन धारणा अंतरमें उतरे तब सम्यक् ज्ञान होता है। धारणामें भी ईश्वरका (आत्माका) लक्ष होना चाहीए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५२२)

पर्यायमें तीव्रसे तीव्र अशुभ परिणाम हो या उत्कृष्टसे उत्कृष्ट शुद्ध पर्याय हो; मेरा कुछ भी बिगाड सुधार नहीं। मैं तो वैसेका वैसा ही हूं। (पर्यायमें कीतना भी फेरफार हो–द्रव्य एकरुप रहता है, ईसलीये किसी भी प्रकारकी क्षणिक–अनित्य पर्यायका मूल्य, ध्रुव नित्य स्वरुपके आगे नहिं !)

(५२३)

मैं पहले तो सब जानलूं, सूनलूं, पीछेसे पुरुषार्थ करुंगा–तो ऐसे पीछेवालोंका सदा पीछे ही पीछे रहेगा। वर्तमान इसी क्षणसे ही पुरुषार्थ करनेकी यह बात है। पहले अपनी आत्माकी प्रभावना करनेकी बात है।

(५२४)

अपने द्रव्यमें दृष्टिका तादात्म्य होते ही ज्ञान प्रमाण हो जाता है–तो ऐसे प्रमाण हूआ ज्ञान सब बातें जान लेता है। (अपनी आंशिक शुद्धि–आंशिक अशुद्धि और अशुद्धिका निमित्त–सबको प्रमाण ज्ञान जान लेता है।)

(५२५)

करोडो शास्त्र पढो तो भी (अनुभव बिना) मात्र मनका बोझा है—आंबला है—भार है।

(५२६)

उल्लासमें उल्लास आ जावे—वह योग्य नहिं।

(५२७)

परिणामकी मर्यादा देखते रहनेसे अपरिणामीका जोर छूट जाता है। (अपरिणामीका जोरमें परिणामका ज्ञान सहज रहता है।)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५२८)

पर्यायमें बैठके धूंटन करनेसे तो पर्यायमें ठीकपना रहता है।... ऐसा कृत्रिम प्रयासका अभिप्राय छोडो।

(५२९)

असलमें बात 'ईतनीसी' है। ईधरमें (अंतरमें) जम जाना चाहीअे। त्रिकाली अस्तित्वमें प्रसरजाना चाहीअे।

(५३०)

सुनना, पढना, चर्चा करना, ये सब उपर उपरकी बात है। असलमें तो अंदरमें जम जाना चाहीअे। स्वरुपमें उंडा उतर जाना चाहिअे।

(५३१)

"षट् आवश्यक आदि क्या? अेक ही (निश्चय) आवश्यक है" यह बात 'आत्मधर्म' में पढ़कर ऐसी चोंट लगी!—यही बात ठीक है।

(५३२)

प्रश्न :—शुरुआत वालेको कैसे अनुभवका प्रयत्न करना?

उत्तर :—"मैं परिणाम मात्र नहिं हूं।' त्रिकाली ध्रुवपणेमें अपनापणा स्थापना—यही ऐक उपाय है।

(५३३)

एकही 'मास्टरकी' (Master key) है। सब बातोंका—सब शास्त्रोंका एकही सार है—"त्रिकाली स्वभावमें अपनापणा जोड देना है।"

(५३४)

विचार आदि तो पर्यायका स्वभाव होनेसे चलता ही रहता है, (परंतु) जोर ध्येय स्वभावकी ओर रहता है, तो परिणति (अंतरमें) ढल जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५३५)

ईस (ध्रुव दृष्टि)का बल आये बिना, (जीव) दूसरी जगह अटकेगा।

(५३६)

निश्चय महाराजजीको नहीं जाना तो ईस महाराजजीको भी उंधा जाना (यथार्थ रुपसे नहिं जाना)।

(५३७)

परिणाम (प्रति)का रसको जमका दूत जानो।

(५३८)

विचार करना,-निर्विचार होनेके लीये।

मीलना,-फीर नहीं मीलनेके लीये।

(५३९)

सच्चे देव, गुरु, शास्त्र भी स्वभावका 'अनायतन' है।

(५४०)

परिणाम अवलम्बन लेता है-मैं नहिं।

(५४१)

प्रौढ विवेकः-निष्क्रिय चिन्मात्र मैं वस्तु हूं।

(५४२)

संसारकी दूकानदारी छोड, शास्त्रकी दूकानदारीमें कहीं लोग फंस गये।

(५४३)

यहां तो अनुभूतिसे ही शुरुआत होती है। अनुभव हुए बिना पर्यायसे भिन्नता होती ही नहिं।

(५४४)

गुरुदेवश्रीके उपदेशमें इतना खुलासा है, कि ओ निंवसे धर्म पंचमकाल तक टीकेगा-ऐसा दीखता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५४५)

कार्य (पर्याय)से कारणको (त्रिकाली द्रव्यको) देखते हो, ईसमें तो मुझे ऐसी चोंट लगती है कि ये क्या ? ऐसी द्रष्टिमें तो त्रिकालीमें जुदापणा ही रहता है, तो त्रिकालीमें एकता कैसे होगी ? वर्तमान पर्यायमें तो मैंपणा थाप रखा है, और त्रिकाली (स्वरुप)की ओर जाना चाहते हो ! लेकीन पर्यायमें मैंपणा छूटे बिना त्रिकालीमें मैंपणा कैसे होगा ?

(५४६)

प्रश्नः—तिर्यंचको तो अनुभवका सुख ठीक और रागका दुःख ओ अठीक ऐसा रहता है, उसमे त्रिकाली ही मैं हूं ऐसा कैसे भासता होगा ?

उत्तरः—त्रिकालीमें आय बिना (त्रिकाली ही मैं हूं-ऐसा अनुभव बिना) सुख होताही नहिं, तो उसमें त्रिकाली स्वभावका आश्रय आ गया। पर्याय बदलती है तो भी मैं नहिं बदलता हूं-ऐसा भासता है।

(५४७)

वर्तमान अंशमें ही सब रमत है। ओ अंतरमें देखेगा तो (अनंत) शक्तियाँ दिखेगी, और बहीर्मूख होगा तो संसार दिखेगा। ईतनासा, (किसी जीव) अंशसे बहार तो जाते ही नहिं, ईतनी मर्यादामें रमत है।

(५४८)

देव-गुरु-शास्त्र प्रत्येकी जो मचक है (शुभभाव है) ओ भी तो नुकशान ही है। ईसमें जीव लाभ मान बेठता है। कहते तो है कि निमित्तसे लाभ होता नहिं, लेकीन अभिप्राय तो लाभका ही बना रखा है, तो वहांसे अपनी ओर आना ही नहिं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५४९)

अज्ञानमें जीव वांचन, श्रवण, मनन आदिका जो पुरुषार्थ करता है उसमें तो थांक (बोझा) लगता है। लेकीन जीसमें थकाण आवे, ओ पुरुषार्थ ही कहां ? सहज पुरुषार्थमें बोझा (थांक) लगता ही नहिं।

(५५०)

जैसे सब निमित्त है—कोई वीर रसका, कोई रौद्र रसका, कोई काम रसका, ऐसे ये देव-गुरु-शास्त्र शांत रसका निमित्त है। लेकीन अपनेमें शांत रस जगावे नहिं, तो उसके उपर उपचार भी जाता नहिं!

(५५१)

सुननेमें भी अेकान्त उल्लास नहिं होना चाहीअे। दीनता लगनी चाहीअे, खेद होना चाहीअे।

(५५२)

द्रष्टि परिणाम पर रखी है, तो द्रव्यकी ओर मुख बदलना है। ओ मुख भी परिणाम बदलता है। मेरेमें (ध्रुव-सामान्यमें) तो मुख भी कहां बदलना है ? मैं तो जहां हूं वहां ही हूं। बदलना-फदलना कुछ मेरेमें नहिं।

(५५३)

प्रश्न :—पर्यायका विवेक तो चाहीअे न ?

उत्तर :—जैसे करोडपति भीखारीको अधिकता नहिं देता (भीखारीसे दीनता नहिं करता) ऐसे पर्यायकी जितनी मर्यादा है उसको ज्ञान जान लेता है। पर्यायको अधिकता देने जायगा तो प्रयोजन ही अन्यथा हो जायगा। (यही विवेक है)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५५४)

बारा अंगका सार "निष्क्रिय चैतन्य–यही मैं हूं" ऐसा निर्णय करना है। मैं तो निष्क्रिय हूं–कुछ करना ही नहिं है। मैं कुछ कर सकता ही नहिं। मेरेमें कुछ करनेकी शक्ति ही नहिं। मैं वर्तमान में ही परिपूर्ण हूं। (ईसमें) करना ही क्या है? ऐसा यथार्थ निर्णय हुआ तो मुक्ति हो गई।

(५५५)

विकल्प सहज होता है, निर्विकल्पता भी सहज होती है, और मैं भी सहज हूं।

(५५६)

'आत्मधर्म' मीला, उसमेंसे अेक ही आवश्यक है—यह पढते ही चोंट लगी! अरे! ये आठ द्रव्यसे पूजा करना! छ आवश्यक! ये सब तो बोझा लगता है–और ईसमें (अेक आवश्यकमें) तो बोझा घट जाता है।

(५५७)

शास्त्रमें ज्ञान करनेका कहा तो कितने लोग चिंतवनमें ही रुक गया और पुरुषार्थ करनेका कहा तो विकल्पमें ही रुक गया।

(५५८)

पहले अपनी (निश्चय) प्रभावना करके, अपने सुख पीनेमें मग्न रहो, बादमें जैसा जैसा योग होता है ऐसा विकल्प आता है।

(५५९)

अपने तो निर्विकल्पता भी करनी नहिं है। ध्रुव स्थलमें बैठनेसे निर्विकल्पता भी सहज होती है। पहले अभिप्राय ठीक करना चाहीए। फीर परिणाम भी ठीक होने लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५६०)

निष्क्रिय भाव कहनेसे, जीवको पुरुषार्थ हीनता लगती है। अरे भाई! ओतो पुरुषार्थकी खाण है। और जो मुक्ति होती है, उसकी भी उसको दरकार (अपेक्षा) नहिं।

(५६१)

प्रश्नः—(यह सब) स्वभावको मजबुत करनेकी बात है!

उत्तरः—स्वभाव तो मजबूत ही है। उसमें बैठ जाव।

(५६२)

आत्मा तो समुद्र है। समुद्रमें जैसे मोझा उठते हैं और अपनेमें ही विलीन हो जाता है। समुद्रको मोझेकी क्या दरकार? ऐसे ईश्वर परिणाम उठते है और समा जाते है। अपन समुद्रको इसकी क्या दरकार?

(५६३)

उपयोग भगवानकी ओर जावे तो भी जो (हम तो) जमका दूत देखते हैं, तो फीर दूसरा कोई कहवे की मेरेसे राग करो, यह कैसे बन सकता है?

(५६४)

नित्य वस्तुका ही भरोंसा ठीक करने योग्य है।

(५६५)

अज्ञानीको ऐसा रहना है कि मैं कषायको मंद करते करते अभाव करदूंगा। लेकीन ऐसे तो कषायका अभाव होता ही नहिं। स्वभावके बल विना कषाय टलता नहिं। मैं कषायको मंद करता जाउंगा और सहनशक्ति बढाता जाउंगा, तो कषायका अभाव हो जायगा, ऐसा अज्ञानी मानता है। और ज्ञानमें जो परलक्षी उघाड़ है, ओही बढता बढता केवलज्ञान हो जायगा, ऐसा मानता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५६६)

(कितने लोग) समजे बिना, द्रव्यमें पर्याय नहिं है-नहिं है, ऐसा ले लेते है। लेकीन पर्याय नहिं है, ऐसा कौन कहते है? दृष्टिका विषयभूत अपरिणामी पर्यायसे अलग है, उसमें पर्यायका अभाव है, उसमें पर्याय नहिं है। ऐसा कहते है।

(५६७)

अपरिणामी एक समयका परिणाममें आजाय तो अपरिणामी खतम हो जाय !

(५६८)

वेदना समुद्घातमें जीवका प्रदेशो शरीरसे बहार निकल जाते है। और शरीरकी बहार वेदन आता है। तो कोई जीव उस परसे भी शरीरसे (आत्माका) भिन्नपणाका विचारमें उत्तर कर काम कर सकता है।

(५६९)

परिणाममेंसे अहंपणा हटना और त्रिकाल स्वभावमें अहंपणा करना ओ शुद्ध जीवका स्वरुप है।

(५७०)

स्वाध्याय आदिका विकल्प ज्ञान है, ओ तो आकुलताके साथ अभेद है और सहज ज्ञान त्रिकाली स्वभावके साथ अभेद है।

(५७१)

में त्रिकाली तत्त्व हूं-उसमें अहंपणा करना, ओ ही बारह अंग, चौदह पूर्वका सार है। अंगपूर्वमें यही कहना है।

(५७२)

सिद्ध भगवान खीसकता ही नहिं, इसका अर्थ ही ऐसा है कि ओ परिपूर्ण तृप्त तृप्त हो गया है, इसलीये खीसकता ही नहिं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५७३)

अनुभव होना तो आसान है, लेकीन ईतनी उघाड शक्ति और न्याय आदि होना श्रमवाला है। अपनेको तो गुरुदेवश्रीने ही सब दिया है।

(५७४)

सम्यग्दृष्टिको एक विकल्प भी, फांसी लगती है। विकसीत स्वभावको फांसी लगती है।

(५७५)

(जिसकी कर्ताबुद्धि मीट गई हैं, ऐसा ज्ञानीको) केवलज्ञान भी करना नहिं है—हो जाता है। तब फीर क्षयोपशम ऐसे करुं-ऐसे करुं ओ तो सब कर्तृत्व ही है।

(५७६)

ऐसी (अध्यात्मकी) बात सुनने मीलजानेसे (कीतने लोगको) संतोष हो जाता है कि दूसरे लोगको ये बात नहिं मीली है, अपनेको तो मीली है न! ऐसे अधिकता मानकर जीव संतोषीत हो जाता है।

(५७७)

सारा तीनलोकका सर्व पदार्थ ज्ञानमें आ जावे, तो भी ज्ञान सबको पी जाता है, और कहता है कि अब कुछ बाकी हो तो आजाव!

(५७८)

(निज सुखके लीये) सारा जगतमें बस! मैं ही एक वस्तु हूं, और कोई वस्तु है ही नहिं। अरे! दूसरी कोई वस्तु है या नहिं है, ऐसा विकल्प भी क्यों?

(५७९)

(रागको) ज्ञानका ज्ञेय, ज्ञानका ज्ञेय, कहते है और लक्ष रागकी और है तो वह सचा ज्ञानका ज्ञेय है ही नहिं। ज्ञानका ज्ञेय तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंदरमें सहजरुप हो जाता है। लक्ष बहार पडा है और ज्ञानका ज्ञेय है ऐसा बोले तो मुझे तो खटकता है। ऐसे 'योग्यता,' 'क्रमबद्ध' आदि सबमें लक्ष बहार पडा हो और कहवे ओ तो मुझे खटकना है।

(५८०)

प्रश्न :—अपरिणामीका अर्थ क्या? आत्मा पर्याय बिनाका सर्वथा कुटस्थ है?

उत्तर :—अपरिणामी अर्थात् द्रव्यमें सर्वथा पर्याय नहिं है, ऐसा नहिं, लेकिन पलटनशील पर्यायको गौण करके, मैं वर्तमानमें परिपूर्ण हूं, अभेद हूं, ऐसे ध्रुव द्रव्य और ध्रुव पर्याय, (जिसको नियमसारमें कारणशुद्ध पर्याय कहा है) उसको लक्षगत करने पर, सम्यक्‌दर्शनकी प्राप्ति होती है। द्रव्य पलटता नहिं है, पर्याय पलटन करती है। यदि द्रव्य पलटनको प्राप्त होवे, तो पलटता हुआ द्रव्यका आश्रयसे स्थिरता हो सके नहिं और स्थिरता बिना सम्यक्‌दर्शन हो सकता नहि। इललिये जो पलटन पाती है उसका लक्ष छोड और ध्रुव अपरिणामी चैतन्य तत्व अेक ही सारभूत है, उसका लक्ष कर! पर्याय परिणमती है उसका परिणमन होने दो! उसकी सन्मुख मत देख। मगर उस ही काल तू परिपूर्ण अपरिणामी ध्रुव तत्व है उसको देख!

अहो! जगतके जीवोंको, मैं वर्तमानमें ही परिपूर्ण ध्रुव अपरिणामी तत्व हुं—यह बात जचती नहिं और प्रमाणके लोभमें, आत्माको यदि अपरिणामी मानेंगे, तो प्रमाण ज्ञान नहीं होगा, और अेकांत हो जायगा, ऐसी आड लगाकर पर्यायका लक्ष नहिं छोडना चाहते है। और यही कारणसे वे अपरिणामी चैतन्य तत्वको नहिं प्राप्त होते है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५८१)

प्रश्नः—आत्माको शास्त्रमें भेदाभेद स्वरुप कहा है और आप तो आत्माको अभेद कहते हो, इसमें आपका क्या प्रयोजन है ?

उत्तरः—प्रमाण ज्ञानकी अपेक्षासे आत्माको भेदाभेद स्वरुप कहनेमें आता है, लेकिन वास्तवमें सम्यग्दर्शनका विषयभूत आत्मा तो अभेद ही है क्योंकी सम्यग्दर्शनका विषय भेद नहिं हैं, इसलिये भेदाभेदका लक्षसे सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति नहिं होती, मात्र अभेदका लक्षसे ही सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती है—यही आशय है।

(५८२)

पुरुषार्थकी व्याख्याः—सहज उद्यम; मैं तो अनादि अनंत अपने स्वरुपमें स्थित हूं—निर्विकल्प हूं, जो सूखरुप है। कृत्रिम उद्यम विकल्पवाला खोटा पुरुषार्थ है, दुःखरुप है।

(५८३)

परिणाम मात्र व्यवहार है। परिणामकी दृष्टिमे दीनता आती है। पर्यायमें रुकनेसे एकांत दुःख होता है। परिणाम उत्पाद व्यय स्वरुप है, मैं तो अपरीणामी हूं। जीसमें उत्पाद व्यय नहिं है। निगोदसे लेकर सिद्ध तक वैसा का वैसा ही हूं। परिणाममें प्रसरनेसे परिणाम जीतना हो जाय !!

(५८४)

प्रत्यक्ष परिणाम सत् है। उसमें फेरफार करनेका विकल्प जूठा है। ध्रुव सदा ध्रुवरुप ही है। सो उत्पाद व्ययको क्या करे ?

(५८५)

मैं तो विकल्प मात्र और परिणाम मात्र से रहित हूं।

(५८६)

मेरा अस्तित्व परिणाम व विकल्पमें नहिं। मैं तो वर्तमानमें

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही त्रिकाली अपरिणामी हूं। मेरेमें (विकल्पका) कर्तापणाका स्वभाव होवे तो कभी मुक्ति नहिं हो सकती।

(५८७)

मैं नित्य सदृश हूं, जीसमें कुछ करनेका व फेरफार करनेका नहिं है। नित्य वस्तुको ध्येय बनानेसे, मेरेमें (सांसारिक) सुख दुःख नहिं, हर्ष शोक पर्याय दृष्टिमें ह।

(५८८)

पर्याय विनश्वर है। ईसमें एकत्व करनेसे स्वयं विनश्वर होना है। श्री योगेंद्रदेव कहते है; पर्यायमें उत्पाद, व्यय, बंध, मोक्ष है, मेरेमें नहिं। (श्रीमद् राजचंद्रजीने भी कहा है:-दिगम्बरना आचार्ये एम स्वीकार्युं छे के जीवनो मोक्ष थतो नथी; परंतु मोक्ष समजाय छे; ते एवी रीते के जीव शुद्ध स्वरुपी छे; तेने बंध थयो नथी, तो पछी मोक्ष थवापणुं क्यां रहे छे? परंतु तेणे मानेलुं छे के 'हुं बंधाणो छुं' ते मानवापणुं विचार वडीए करी समजाय छे; के मने बंधन नथी, मात्र मान्युं हतुं। ते मानवापणुं शुद्ध स्वरुप समजायाथी रहेतुं नथी, अर्थात् मोक्ष समजाय छे.' आ वात 'शुद्धनय'नी अथवा 'निश्चयनय'नी छे. पर्यायार्थी नयवाळाओए नयने वळगी आचरण करे तो रखडी मरवानुं छे.)

(५८९)

अरिसेमें समय समयका (प्रतिबिम्ब जैसा) आकार होता ह। तो भी अरिसाका दल युं का युं रहता है। ऐंसे स्वभाव अरिसाका दल जैसा है। स्वभावके साथ तादात्म्य है। आकारके साथ नहिं। त्रिकालीमें वर्तमान परिणामका अभाव है।

(५९०)

(लोगों) मूक्तिको चाहते है, लेकिन अभिप्रायमें कर्तापणा पडा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है सो मुक्ति कैसे बने? मैं पूर्ण हूं ऐसा निश्चय होने पर कर्तापणा नहिं है।

(५९१)

स्वभाव सावधान स्वरुप है। पर्यायमें सावधानी होनेपर स्वभाव पकडनेमें नहिं आता।

(५९२)

वर्तमानमें ही पूर्ण हूं। सूखका प्रयोजन है। ज्ञानका नहिं।

(५९३)

सारा जगत ज्ञानका ज्ञेय है।—अनुकुल प्रतिकुल कुछ नहिं। ईस अभिप्रायमें दृष्टि अभेद होनी चाहिए। दृष्टिमें मचक नहीं आनी चाहिए। अभिप्रायमें परसे लाभनूकशानकी मान्यता नहिं। अभिप्रायमें इच्छा व दीनता नहिं होना चाहीए।

(५९४)

मैं त्रिकाल अपरिणामी हूं। परिणाम मात्र गौण है। ऐसा वर्तमानमें निश्चय होना चाहीए। ध्रुव स्वभाव सदा प्रसिद्ध है। उत्पाद व्ययके कालमें जुदा प्रगट है। द्रष्टि प्रति समय पर्यायको गौण करती है।

(५९५)

प्रश्नः—जीवनुं कर्तव्य शुं?

उत्तरः—पर्यायमें कर्तव्य है। परमार्थसे कोई कर्तव्य नहिं। प्रमाण—ज्ञानका प्रयोजन निश्चयको प्रकाशनेका है।

(५९६)

मैं तो प्रतिमा समान अपरिणामी हूं, मेरेमें पणोठीवालकर बैठ जाता हूं अरिसाका दलकी तरह निष्क्रीय हुं। परिणाम जो होने लायक होता है। मैं तो पर्याय निरपेक्ष द्रव्य हुं सोही निष्क्रियता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५९७)

पर्यायको उसका स्वकालमें रहने दो, वह उस कालका सत् है। उसमें उपयोग रोकना नहिं।

(५९८)

द्रव्य, पर्यायको आलिंगता नहिं। पर्याय द्रव्यको आलिंगती नहिं। कथंचित्, व्यवहारसे, आलिंगती है।

(५९९)

हर समय द्रव्य स्वभावकी अधिकता रहनी चाहिए। तरणाकी आडमें डुंगर नहिं दिखता वैसे दृष्टि परिणाम पर रुकनेसे परीणामी ढंक जाता है।

(६००)

चार अनुयोगः—(संक्षेपमें)

करणानुयोगः—विकार और विकारके फल.

द्रव्यानुयोगः—स्वभाव और स्वभावका फल.

चरणानुयोगः—चारित्रकी स्थिरता.

कथानुयोगः— उपर-सबकी कथा.

(६०१)

मैं निष्क्रिय त्रिकाली हुं। ईस चश्मा लगाकर देखनेसे सब गुण अपना कार्य करता है। इसमें सहज ज्ञान और पुरुषार्थ आ जाते है। (सहज स्वरुपमें) साधक-बाधक कोई नहिं है। यह चश्मा लगानेमें-अर्थात् ध्रुवकी मुख्यतामें सब यथार्थ दिखता है। साधक-बाधक भाव पर्यायमें है, मैं तो ध्रुव हूं।

(६०२)

निश्चयाभास होनेका भय और प्रमाण ज्ञानका लोभ रहनेसे सत्यमार्ग दिखाई नहिं देता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६०३)

क्षणिकभाव व्यक्त है, उसको गौण करना और त्रिकालीभाव अव्यक्त है उसको मुख्य करना।

(६०४)

यथार्थ निश्चयमें सुख प्रगट होता है!

(६०५)

जैसे एक द्रव्य, दूसरा द्रव्यका कुछ नहिं करता, वैसे एक सत् दूसरा सत्का कुछ नहिं करता। त्रिकाली सत् क्षणिक सत्को नहिं करे, क्षणिक सत् त्रिकालीका कुछ नहिं करता।

(६०६)

त्रिकालीमें विकार-अविकार कुछ नहिं है।

(६०७)

प्रमाणसे द्रव्य पर्यायका कर्ता है। निश्चयसे द्रव्य पर्यायका कर्ता नहिं है।

(६०८)

वर्तमानमें ही अक्रिय, अपरिणामी हूं अर्थात् कोई क्रिया करनेका अभिप्राय नहिं। कुछ करुं-करुंमें स्वयम परिणमता परिणामको करनेका अभिप्राय रहता है।

(६०९)

निरालंबी तत्वमें बैठ जाना। वर्तमानमें ही परिपूर्ण हूं; फिर करना क्या? ज्ञान करना! वो तो सहज ही है; उसका भी बोझा उठानेकी जरुरत नहिं।

(६१०)

विकल्प स्व का और पर का अेक ही जातका है, क्षणिक है, मैं त्रिकाली निर्विकल्प हूं, मेरेमें विकल्पकी नास्ति है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६११)

ज्ञान बढानेकी, व कषाय घटाडनेकी जरुर नहिं। ऐसे तो केवल-ज्ञान प्रगट करनेकी जरुरत नहिं। परिणाम पर मत खींचाव, सहज स्वभाव रह जायगा।

(६१२)

मैं स्थिर हूं ऐसा निर्णय करनेपर स्थिरता आती है-टिकती है-और बढती है। और सुख होता है। मैं अस्थिर हूं ऐसा भावमें सुख नहिं मिलता, दुःख होता है।

(६१३)

अभिप्रायमें परिणाम, गति आदि गौण हो जाता है और मरणके समय क्षेत्रांतर पर दृष्टि नहिं लेकिन परिपूर्ण पर दृष्टि है।

(६१४)

प्रति समयका परिणमन उस कालमें जाना हूआ प्रयोजनवान है बस ईतनीही मर्यादा है।

(६१५)

वस्तु स्वरुपम तो सहजका धंधा है, उसमें वादविवाद करे सो अंधा है।

(६१६)

जो क्षणिक सत्को स्वीकारता नहिं, वो त्रिकाली सत्को कैसे स्वीकार कर सके।

(६१७)

एक ओर त्रिकालीका पल्ला, दूसरी ओर क्षणिकका पल्ला, जैसे एक ओर माल, दूसरी ओर बारदान, महत्ता मालकी है। बारदानकी नहिं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६१८)

गतिमें व्यवहारसे क्षेत्रांतर होता है। निश्चयसे अपना क्षेत्र कभी नहिं छूटता।

(६१९)

ज्ञानकी पर्याय ज्ञेयके साथ संबंध रखती है। ज्ञायकका संबंध किसीके साथ नहिं।

(६२०)

प्रश्नः—आ काळे सत् समागम लाभकारी छे ?

उत्तरः—निश्चय अपनी आत्माका समागम करना वोही सत् समागम है, और लाभकारी है। व्यवहारसे देव, गुरु, शास्त्र, व धर्मात्माका सत्समागम है।

(६२१)

मैं ध्येय स्वरुप हूं। परिणाम मेरा ध्यान करता है।

(६२२)

जीसमें थकावट आवे उसें हेय जानें। शुभाशुभमें थकावट आती है, शुद्धभावमें थकावट नहिं। पर्यायको पर्यायके स्थानमें रहने दो।

(६२३)

पोपट भोंगलीमें उंधा हो जाता है; पडनेकी बीकसे भोंगलीको छोडता नहिं। भोंगलीको छोडे तो उडनेका सहज स्वभाव है; अपनी स्वाभाविक शक्तिको भूला हूआ है। वैसे अज्ञानीको परिणामकी पकड़ है; अपनी शक्तिको भूलता है।

(६२४)

सम्यक्‌दृष्टिको राग प्रति पीठ है, मूख नहिं; मैं तो सदा अंतर्मुख हूं, मेरेको विकल्प साथ संबंध नहिं। तो दूसरोंकी क्या बात ? आत्मा ही निज वैभव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६२५)

मैं परिणामसे शून्य हूं ऐसा जोर आना चाहीए।

(६२६)

द्रव्यलींगीको मंद कषायकी मूख्यता व द्रव्यकी गौणता है।

(६२७)

मेरी भूमि वर्तमानमें ही ईतनी निष्कंप व नक्कोर है की जीससे में वर्तमानमें ही निर्भय हूं, निरालंबी हूं, परिपूर्ण हूं, निष्क्रिय हूं, सुखरुप हूं, कृत् कृत्व हूं, त्रिकाल एकरुप हूं, अचल हूं।

(६२८)

(स्वयंकी प्रसिद्धिके बारेमें पूछा गया गया तभी कहा) कोई जाने, नहिं जाने ईसमें आत्माको कोई फायदा नहिं। अनंत सिद्ध हो गयें, आजकल कोई नाम भी नहिं जानते हैं। और असंख्य सम्यग्दृष्टि अढी द्विपबाहर अभी मोजूद है कौन जानते है ? आप कीसीके लीये बोझा मत उठाना। मैं अपनी बात अपने मूखसे नहिं कह सकूं। कोई बात बनाके जाना वो अपनेसे नहिं हो सकता है।

(६२९)

एक पल्लेमें आत्मा और एक पल्लेमें तीन काल तीन लोक। आत्माका पल्ला बैठ जाता है। दूसरा पल्ला उघड़ जाता है।

(६३०)

द्रव्यलींगी मुनिने उंधा वीर्य बहोत लगाया है। जीतना जोरसे उंधा पड़ा है ईससे अधिक वीर्य सम्यक् होनेमें लगाना पडेगा। जभी सम्यक् होगा।

(६३१)

पू. गुरुदेवके एक घंटेके प्रवचनमें पूरीपूरी बात आ जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६३२)

(धार्मिक पर्वके दिनोंमें, मंदिरजीमें पू. ब्हेनश्री-ब्हेनकी भक्ति देख कर बोले) "ऐसी भक्ति मेरेमें नहिं; ईस बातेमें तो अपनी क्षतिको देखता हूं।"

(६३३)

(श्रीमद् राजचंद्रके पत्र नं. ४०५ पढ़कर प्रमोदसे उद्‌गार निकले) ओहो क्या चीज रखदी है ईसमें!!

(६३४)

ऐसी (लागणी प्रधान होकर चेष्टा करनेकी) मेरी प्रकृति नहिं। फीर भी कोई योग्यता पडी होगी, जो अपने स्वकालमें बाहर आ गई। (इस योग्यता वश भाईश्री राजकोटके हवाई अड्डे पर श्री लालचंदभाइको भेट पडे थे।)

(६३५)

प्रश्नः—सम्यग्दर्शनके पहले आपकी कैसी दशा थी?

उत्तरः—निर्विकल्पताके पहले विकल्पका ईतना दुःख मालूम हुआ था। ऐसी दशा हूइथी कि अगर देह छूट जायगा या विकल्प फट जायगा! तीसरी बात होने वाली नहिं थी।

(६३६)

निश्चय ग्रंथ आत्मा है; निश्चय गुरु आत्मा है और निश्चय देव भी आत्मा है। मूल बात ईधर से है। बादमें बाहरके निमित्तो पर उपचार कीया जाता है।

(६३७)

मैं तो अभी सिद्ध हूं। चौदवा गुणस्थान होगा और बादमें सिद्धालयमें जाना होगा। क्षेत्रांतर विगेरे होगा, लेकिन ये सब कार्य पर्यायमें होगा। पर्यायका कार्य पर्यायमें होता है, मेरेमें नहिं, मैं तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अभी सिद्धालयमें ही बेठा हूं। कभी कहीं आया भी नहिं, गया भी नहिं।

(६३८)

प्रश्नः—पुरुषार्थ कैसे करना ?

उत्तरः—मैं वर्तमानमें ही अनंत वीर्यका पिंड हूं। यही पुरुषार्थ है।

प्रश्नः—दृष्टि तो फेरनी है न ?

उत्तरः—मैं ही खुद दृष्टा हूं; ईस भावमें दृष्टि नहिं फेरनी है, वर्तमानमें ही कृतकृत्य हूं, ईसमें कुछ करनेका नहिं।

(६३९)

प्रश्नः—परिणति अंतरमें अभेद रहती है; ईसलीये आप साधक है?

उत्तरः—पर्यायकी अपेक्षासे मुझे साधक कहो तो कहो!! अैसे तो मैं न साधक हूं न बाधक हूं।

(६४०)

यह (भव) तो मुसाफरी है। अब तो आखिरकी मुसाफरी है।

(६४१)

गुरुदेवके लीये मेरे हृदयमें क्या है ? सो चीर कर कैसे बतावुं ? बस ये तो मेरा ज्ञान ही जानता है।

(६४२)

(एक मुमुक्षु) हमारे पढना नहिं है। मुनि होना है!

(भाईश्री) हमारे तो न पढ़ना है, न मुनि होना है। हमारेमें कुछ होनेका सवाल ही नहिं। मैं तो जो हूं सो हूं।

(६४३)

मुझे ईतनी थकाण (बाह्य कार्यमें) आती है कि कितनेही दीनों एकांतका मीले फीर भी थकाण नहिं उतरे। ईतनी एकांत प्रियता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(६४४)

(शामका समय) प्रस्तावः-आप हमारी साथ गुरुदेवके पास आओगे ?

उत्तरः—आप जाईए, मैंने तो गुरुदेवको (हृदयपर हाथ लगाकर) यहां बीठा दीया है। (बादमें आप ध्यानमें बैठे थे।)

(६४५)

प्रश्नः—आप कोनसा शास्त्रका वांचन अब करते हो ?

उत्तरः—शास्त्र वांचनकी खास आदत नहिं रही। और मुझे क्षयोपशम भी नहिं बढ़ाना है।

卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi